कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

हिन्दी की लम्बी कविताओं का प्रथम दस्तावेज़

कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

संपादक : डॉ० नरेन्द्र मोहन



संभावना प्रकाशन, हापुड़

उन सभी कवियों को जिन्होने
लम्बी कविता को
संभव बनाया

कही भी खत्म कविता नहीं होती



कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'चकमक की चिनगारियां' के अन्तिम भाग की दो पंक्तियां हैं :

> नहीं होती, कहीं भी खत्म कविता नहीं होती
> कि वह आवेग त्वरित काल यात्री है

कविता की समापन रूढि से मुक्त होने का यह वक्तव्य कोरा शाब्दिक प्रस्ताव नहीं है, यह वक्तव्य मुक्तिबोध की कविता दृष्टि में से छनकर आया है। कविता को 'आवेग त्वरित काल यात्री' मानने वाला कवि कविता को बाकायदा समाप्त करने की रस्म निभा ही नहीं सकता, खास तौर से तब तो बिल्कुल ही नहीं जब ऐसा करने के साथ कलावादी और बिम्बवादी आशय चिपके हुए हों। मुक्तिबोध जानते थे कि कलात्मक अन्विति की दुहाई देकर या बिंब को प्रतिमान मानकर कविता में से उभर रही भाव या विचार चेतना को अवरुद्ध करने के प्रयत्न किये जाते रहे हैं। अन्विति संबंधी ऐसे तकाजों और प्रतिमानों को मुक्तिबोध अपनी कविता के लिए, खास तौर से, लम्बी कविताओं के रचना-विधान के लिए एक गैर जरूरी और अनुचित हस्तक्षेप मानते थे क्योंकि उन्हें लगता था कि इस तरह की धारणाएं यथार्थ को सीमित करती हैं और इसके विविध रूपों और गतिशील तत्वों की पहचान में बाधक बनती हैं। यथार्थ के विविध और गतिशील रूपों, तत्वों द्वारा परिचालित होने वाले और लम्बी कविता को एक अनिवार्य काव्य माध्यम के रूप में अपनाने वाले मुक्तिबोध जैसे कवि से कलावादी, बिंबवादी आशयों की पूर्ति के निमित्त कविता को परंपरित अर्थ में समाप्त करने की धारणा के विरुद्ध वक्तव्य देना स्वाभाविक ही था। यह वक्तव्य, इसीलिए, मुक्तिबोध द्वारा केवल अपनी कविताओं के पक्ष में दिया गया सबल तर्क भर नहीं है, हिन्दी की लम्बी कविताओं के संदर्भ में

भी इस वक्तव्य की अहमियत है। इसमें यथार्थ को पकड़ने और अभिव्यक्त करने की तथा एक नये रूप-विधान में कविता रचने की छटपटाहट की ओर स्पष्ट संकेत है। इसमें कविता के प्रति उनकी वह रचना-दृष्टि भी सामने आ गयी है जो उनकी रचनाधर्मिता और मूल्यांकन पद्धति का आधार है। ध्यान देने की बात है कि वे भावुक कवियों की तरह कविता को केवल 'आवेग त्वरित' कहकर छुटकारा नहीं पा लेते। वे उसे 'आवेग त्वरित काल यात्री' कहते हैं और उसे काल के आयाम में, ऐतिहासिक परिस्थिति के संदर्भ में ग्रहण करने और फैलाने पर बल देते हैं।

इस वक्तव्य का महत्व इस दृष्टि से भी है कि इसके माध्यम से लम्बी कविता के कुछ खास पहलू उजागर हो सके हैं, यद्यपि सभी प्रकार की लम्बी कविताओं में इन्हें खोजना भ्रामक और अनुचित ही होगा। लम्बी कविताएं रचते हुए मुक्तिबोध को एक भिन्न किस्म का अनुभव हुआ था—छोटी कविता, प्रगीत और प्रबंधात्मक विधान में काव्य रचना करने से निष्पन्न अनुभव से अलग और विशिष्ट—जिस पर न छोटी कविता और प्रगीत के नियम लागू हो सकते थे, न प्रबन्धात्मक विधान के। शुरू शुरू में इससे मुक्तिबोध को परेशानी और दुविधा जरूर हुई[1] और उन्हें उपेक्षा भी सहनी पड़ी क्योंकि उनकी कविताएं प्रचलित मान्यताओं और प्रतिमानों के अनुकूल नहीं थीं। पर चूंकि लम्बी कविता का विधान उनकी रचनाधर्मिता और यथार्थ-बोध के दबावों में से सहज रूप से फूटा था, इसलिए बावजूद कठिनाइयों और परेशानियों के, वे उसे गंभीर सर्जनात्मक निष्ठा के रूप में अपनाए रहे और कविता और आलोचना की बनी-बनाई सरणियों और परिपाटियों को चुनौती देते रहे। इसी सिलसिले में उन्होंने अपनी लम्बी कविताओं द्वारा कविता की समापन रूढ़ि से मुक्त होने का प्रमाण दिया तथा अन्विति संबंधी घिसी-पिटी प्रगीताश्रित मान्यताओं को अमान्य ठहराया।

हमारे यहां कविता की आलोचना के प्रतिमान, मुख्य रूप से, छोटी कविताओं, प्रगीतों या प्रबन्धात्मक काव्यों के आधार पर ग्रहण किए जाते रहे हैं। ये प्रतिमान लम्बी कविताओं या लम्बे आकार में फैली हुई रचनाओं के विश्लेषण-मूल्यांकन करने में सहायक सिद्ध होने के बजाय, अधिकतर, बाधक ही बने हैं। लम्बी कविताओं में संवेदनात्मक तथा चेतनागत तनावों को ब्यौरों की सहायता से जिस रूप में संतुलित किया जाता है, उसकी कल्पना भी छोटी कविताओं या प्रगीतों के रचना-

1 कल ही मैंने एक लम्बी कविता खत्म की। उस का अंत मुझे शिथिल सा जान पड़ा। उस के अन्त पर जितना अधिक सोचता गया मुझे लगा कि उस कविता को और बढ़ाना होगा, कि वह अपने आप बढ़ जायेगी। मुझे उसकी संभावित लम्बाई-चौड़ाई देख, भय सा जान पड़ा, भय इसलिए कि इतनी दीर्घता हमारे यहां अच्छी नहीं समझी जाती।' मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी पृ॰26

विधान में नहीं की जा सकती। यथार्थ की गतिशील और गुम्फित प्रकृति को लम्बी कविताओं में ही अभिव्यक्त किया जा सकता है, छोटी कविताओं में नहीं। लम्बी कविताओं को, इसीलिए, छोटी कविताओं के प्रतिमान के आधार पर अथवा प्रगीतात्मक या प्रबन्धात्मक अभिरुचि से निर्मित आलोचना पद्धति द्वारा परखा नहीं जा सकता। छोटी कविताओं, प्रगीतों और प्रबन्धात्मक-विधानों पर निर्भर और उनसे बनी आलोचनात्मक आदतों द्वारा लम्बी कविताओं को समझने में हमेशा कठिनाई रहेगी।

किसी साहित्यिक रचना के रूप-विधान के बनने-टूटने और अप्रासंगिक हो जाने का जैसे एक इतिहास है उसी तरह साहित्य के क्षेत्र में किसी नये रूप-विधान के उदय, प्रारम्भ और चरम बिन्दु तक पहुँचने का, उसके उभर कर सामने आने का भी एक इतिहास है। इसे नजरअन्दाज करने से किसी भी समय के साहित्य को या उसके रचना-विधान को समझा नहीं जा सकता। रूप-विधान में परिवर्तन की जड़ें उस समय के समाज में या युग विशेष में विद्यमान रहती हैं। इस संदर्भ में ही कवियों द्वारा, समय-समय पर, अभिव्यक्ति के संकट को महसूस किया जाता रहा है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि इतिहास के किस बिन्दु पर कौन सा रूप-विधान कवियों द्वारा अंशतः या पूर्णतः अस्वीकृत कर दिया गया? यह भी संभव है कि किसी युग विशेष में दो से अधिक रूप-विधान समान रूप से कवियों तथा पाठकों द्वारा ग्रहण किये जाते रहे हों या कवियों द्वारा एक की अपेक्षा दूसरे को तरजीह दिए जाने की प्रवृत्ति रही हो। कई बार एक ही समय में साहित्य में अनेक रूप विधानों की सह स्थिति भी दिखती है। नयी परिस्थितियों में कवि का सृजनात्मक बोध नये-नये रूपाकारों को ग्रहण करने के प्रति आकर्षित होता है पर परम्परागत रूपाकारों की अभिव्यक्ति क्षमता में विश्वास और उनमें लिखने की अभ्यासी मनोवृत्ति उस पर अंकुश भी लगाये रखती है। छायावादी-युग की हिन्दी कविता में नये रूप-विधान के प्रति आकर्षण तथा पुराने रूप विधान द्वारा पैदा हुए प्रतिवर्तों को एक साथ देखा जा सकता है। छायावाद युग में प्रबन्धात्मक विधान का चरम निदर्शन 'प्रसाद' की कामायनी' (1936) में जरूर मिला पर इसी युग में सुमित्रानन्दन पंत की 'परिवर्तन' (1923), जयशंकर प्रसाद की 'प्रलय की छाया' (1933) और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' (1937) जैसी लम्बी कविताएं भी लिखी गयीं जिनसे कविता का प्रबन्धात्मक और प्रगीतात्मक ढांचा बुरी तरह हिल गया। लम्बी कविताओं का यह प्रारम्भिक दौर प्रबन्धात्मक और प्रगीतात्मक ढांचे की जकड़बन्दी से मुक्त होने का पहला काव्यात्मक अभियान था। यह अभियान आगे चलकर वास्तविक सामाजिक स्थितियों को जैसे-जैसे आत्मसात करता गया, इसका रूप निखरता गया और प्रबन्धात्मक रूपविधान अप्रासंगिक बनता गया।

यह एक तथ्य है कि आधुनिक जीवन की जटिल वास्तविकता ने परंपरागत क्लासिकल काव्यरूपो की उपयोगिता और सार्थकता के सामने प्रश्न-चिह्न लगाया है। ये काव्य-रूप अभिव्यक्ति मे सहायक बनने के बजाय बाधक ही बने है और इनके रूढ साचो से जुडी हुई अपेक्षाओ के कारण आधुनिक अनुभव की अभिव्यक्ति अवरुद्ध हुई या कम अभिव्यक्त हुई है। कोई अभिव्यक्ति-प्रकार जब इस तरह से काव्यानुभव को अपने साचो मे, अपनी शर्तों पर जकड लें तो उसकी रचनात्मक उपयोगिता सदेहास्पद हो जाती है। प्रबन्धात्मक रूप-विधान के साथ यही हुआ है। इसके रचनात्मक दृष्टि से अनुपयोगी और अप्रासगिक हो जाने का एक खास कारण यह रहा है कि यह काव्य-रूप एक रूढ पद्धति के अनुरूप प्रतिक्रियाए जगाता रहा जिससे आधुनिक अनुभव और वास्तविकता तथा उससे निष्पन्न चेतना के साथ इसका विशेष तालमेल न बैठ सका। आधुनिक जीवन की उलझी हुई परि-स्थितियो और जटिल सवेदनाओ के सदर्भ म परपरागत काव्य-माध्यम अपर्याप्त सिद्ध हुआ। उसे पुराने रूप-विधान म अभिव्यक्त करना सभव न रहा। यह एक दिलचस्प उदाहरण है कि वास्तविकता के अनुरूप अपने साचो मे रद्दोबदल न कर सकने के कारण तथा अपने रूपात्मक कलेवर मे बधी हो जाने से कोई काव्य-रूप कैसे अपनी प्रासगिकता खोकर बाह्य हो जाता है। अभिव्यक्ति की इस समस्या से जूझने के दौरान ही ऐसे काव्य-माध्यम की तलाश शुरू हुई जिसम नए जीवन विधान की सगति हो और जो परपरागत रूप-विधान की रूढियो से मुक्त भी हो, जिसमे नए सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हो और जो आधुनिक परिस्थिति और सवेदना द्वारा पुष्ट और प्रमाणित भी हो। इस तलाश के सिलसिले मे ही लबी कविता का नाटकीय विधान उभर कर सामने आया। कवि-कर्म की नई धारणा के परिणामस्वरूप तथा परिस्थिति और कवि-मन के एक साथ क्रिया-त्मक हो उठने और क्रिया-प्रतिक्रिया म नियोजित हो जाने से लबी कविता के रूपात्मक अन्वेषण तथा रचनात्मक प्रतिफलन मे मदद मिली। आधुनिक स्थितियो को देखते हुए लबी कविता, इस अर्थ में एक काव्यगत अनिवार्यता सिद्ध हुई।

लम्बी कविता की रचना-प्रक्रिया का एक विधायक अन्तवर्ती पहलू सर्जना-त्मक तनाव है। सर्जनात्मक तनाव की प्राथमिक स्फूर्ति या उसका मात्र एक क्षण लम्बी कविता नही लिखवा सकता, भले ही उससे एक सुन्दर बिम्ब या एक अच्छी छोटी कविता की सृष्टि हो जाए। लम्बी कविता की रचना तभी संभव है जब सर्जनात्मक तनाव दीर्घकालिक हो तथा विस्तृत फलक पर अपनी क्रियात्मकता सिद्ध कर रहा हो। पर एडगर ऐलन पो को लगता है कि लम्बी कविता मे इसे साध पाना सभव नही है। वे यह मानते हैं कि लम्बी कविता महज एक विरोधाभास है क्योंकि तनाव की जिस मात्रा से कोई रचना कविता के योग्य बनती है, उस तनाव

को किसी बड़े आकार मे या लम्बे रचना-विधान में बराबर बनाए रखना सभव नही है।[1] यहा पो छोटी कविता या प्रगीत के तनाव सबधी प्रतिमान को लम्बी कविताओ के विधान पर लाद रहे हैं। तनाव सबधी जो धारणा पो के मन मे है वह प्रगीत या छोटी कविताओ पर आधृत है। पो जिस तनाव की बात कहते हैं वह एक मनोदशा तक सीमित रह जाने वाला तनाव है। विभिन्न मनोदशाओ का बोध जगाने वाले तनाव की प्रकृति छोटी कविता की तनाव सबधी धारणा से भिन्न होगी ही। पो की इस धारणा का कि कोई भी लम्बी रचना सदैव समान रूप से तनाव की तीव्रता को कायम नही रख सकती, का खडन टी० एस० इलियट ने अपने एक निबन्ध मे यह कहकर किया है कि लम्बी कविता मे तनाव और विश्रान्ति की क्रिया 'मूवमेंट आफ टेंसन एण्ड रिलाक्सेशन'[2] रहती है। मैंने अन्यत्र इस सबध मे लिखा भी है कि लम्बी कविता के सरचनात्मक विकासक्रम मे एक तनावपूर्ण अश या परिच्छेद के बाद निहायत सीधा-सादा, सपाट, गद्यात्मक अश या परिच्छेद भी रह सकता है जो पूर्ववर्ती तनाव दशा के परिप्रेक्ष्य मे या समग्र कविता के सदर्भ में सार्थक हो।[3] लम्बी कविता मे इस तरह के सरचनात्मक सतुलन को साधना और कायम रखना जरूरी है। इलियट ने 'द वाइडेस्ट पासिबिल वेरीएशन्ज ऑफ इटेंसिटी'[4] की ओर सकेत करके लम्बी कविता मे उपस्थित तनाव के विविध रूपो और स्तरों के सर्जनात्मक उपयोग की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। सर्जनात्मक तनाव के इन विविध रूपो और स्तरों को वास्तविक स्थितियों के सदर्भ मे रखना और उनके दबाव को झेलना लम्बी कविता की रचना प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त है।

सर्जनात्मक तनाव की बनावट और प्रकृति को समझना भी बहुत जरूरी है। इस तनाव के पीछे भावना है या विचार, अनुभव है या बिंब या अनुभव और विचार की सश्लिष्ट प्रवृत्ति,यह जानना जरूरी है। केवल भाव स्फूर्त तनाव कविता को लम्बाई में फैला जरूर सकता है, उसे लम्बी कविता नहीं बना सकता। हां

1 'आई होल्ड [illegible] ए लांग पोयम इज नाट एग्जिस्ट। आई मेनटेन दैट [illegible] फ्रेज, 'ए लांग पोयम' इज सिम्पली ए फ्लैट कटराडिक्शन इन टर्म्ज' 'दैट डिग्री आफ एक्साइटमेंट विच वुड इनटाइ-टल ए पोयम टु बी सो काल्ड एट आल कैन नाट बी सेसटेंड थ्रू आउट ए कम्पोजिशन आफ एनी ग्रेट लेंथ'।

फिलिप वान डारिन (स०) दी पोर्टेबल पो, (दी वाईकिंग प्रेस, 1945),पृ० 568

2 टी० एस० इलियट 'परोज एण्ड वर्स', चेप बुक,सख्या 22 (अप्रैल 1921) पृ०-5

3 नरेन्द्र मोहन लम्बी कविताओं का रचना-विधान, पृ०-7

4 टी० एस० इलियट टु क्रिटिसाइज दि क्रिटिक एंड अदर ऐस्सेज (फेबर एण्ड फेबर, लदन 1965) पृष्ठ० 34

भावावेश अगर किसी बात को लेकर हो, वह बात किसी दूसरी बात से जुड़ी हो दूसरी बात किसी तीसरी बात से, तो लम्बी कविता में उसकी सार्थकता हो सकती है।[1] इसके लिए अनुभव और विचार काव्यात्मक विधान जरूरी है। कविता में अनुभव और विचार के विशिष्ट समीकरण को साध कर ही भावुकतापूर्ण और अनुभववादी धारणाओं से मुक्ति पाई जा सकती हैं। इस ओर विद्यानिवास मिश्र ने भी संकेत किया है 'युद्ध के सामने दूसरी ही लाचारी है, वह है सघन भावुकता से बचने के लिए जो एक निर्मम बौद्धिक प्रयत्न हो, उसके लिए कुछ अतिरिक्त स्पष्टीकरण, बातों को कहने के लिए कई प्रकार की भंगिमाएं, बातों को एक दूसरी बात से काट कर, पुन तीसरी बात से काट कर धीरे-धीरे उत्कर्ष शिखर रचने का आग्रह, यह सारी चीजें जरूरी हो जाती हैं[2] यह निर्मम बौद्धिक प्रयत्न लंबी कविता की वैचारिक बनावट की ओर संकेत है जहां बातों को एक दूसरी बात से काट कर, पुन तीसरी बात से काट कर धीरे-धीरे उत्कर्ष शिखर रचने का 'संकल्प रहता है। इससे लम्बी कविता 'आटो-राइटिंग' नहीं रह जाती। इसमें न आत्म का लोप होता है, न वृहत्तर संदर्भों का। इसमें दोनों का नियोजन टकरावपूर्ण रहता है। इस टकराव और इससे उत्पन्न तनाव की अभिव्यक्ति के लिए वैचारिक संवेदना या मुक्तिबोध के शब्दों में 'ज्ञानात्मक संवेदना' ही एक मात्र उपाय है। इसे ही मैं अनुभव और विचार का संयुक्त रचना-विधान कहना चाहूंगा। लंबी कविता के लिए यही सर्वाधिक उपयुक्त रचना-विधान हो सकता है।

अनुभव और/या विचार के लगातार दबाव से या किसी विधायक बिंब या रूपक की लगातार केंद्रीय स्थिति से ही सर्जनात्मक तनाव निष्पन्न होता है। इसके बिना लंबी कविता की (लंबी कविता की संरचना भले कितनी ही अराजक क्यों न बना दी जाए।) कल्पना नहीं की जा सकती। सर्जनात्मक दृष्टि से लंबी कविता के विधायक बिंब या रूपक और इसके संरचनात्मक वैविध्य, बिखराव और सूत्रेपन में विरोध नहीं है। इसी बिंदु पर बिंब और विवरण और विचार कवि के अभिप्राय को ठहराते हैं। इसे प्रतिभाशाली कवि ही साध पाते हैं। इसे न साध पाने के कारण क्रेन की लंबी कविता 'द ब्रिज' असफल रह गई और इसे [illegible]ने की वजह से विलियम कार्लोस विलियम्स की लंबी कविता 'पेटरसन' बन गई।

लंबी कविताओं की रचना प्रक्रिया का प्रश्न, अतत
से भी जुड़ा हुआ है। लंबी कविता ऊपर से विशृंखल
पर भीतर से संगठित हो सकती है। लंबी

1. देखिये एक साहित्यिक की डायरी मुक्तिबोध
2. कल्पना (अप्रैल 1974) पृ० 54

तार्किक नहीं होती। अनेक प्रसंगों, कथात्मक अंशों और संदर्भों-संकेतों का असंबद्ध सा दिखने वाला वर्णन-चित्रण इसमें रह सकता है, पर इस असंबद्धता में ही संबद्धता और अन्विति के आतंरिक, सर्जनात्मक सूत्र विद्यमान रह सकते हैं। यह अनुमान किया जा सकता है कि लंबी कविता का गठन जहां बिंबात्मक हो वहां आवयविक और अखंडित दिखे और जहां बिंब संकेन्द्रण पर आग्रह न होकर संदर्भों और प्रसंगों की सन्निधि और टकराव पर बल दिया गया हो वहां अन्विति शिथिल और खंडित दिखे। लंबी कविताओं में अन्विति के ये दोनों ही प्रकार—बिंबात्मक और वैचारिक मिलते हैं। पहले प्रकार की अन्विति में सभी विवरण, संदर्भ और प्रसंग केंद्रीय बिंब द्वारा संतुलित रहते हैं तो दूसरे प्रकार की अन्विति में किन्हीं विचार-सूत्रों से जुड़े बिंबों का अनवरत क्रम। इलियट बिंबात्मक विधान और सपाटबयानी को, संयुक्त रूप से, अपनी लंबी कविताओं में महत्त्व देते प्रतीत होते हैं तो एज़रा पाउंड संदर्भों के विपर्यास को बिंबात्मक क्रम में बांधने का प्रयत्न करते हैं, उनकी बिखरी हुई सत्ताओं को बिंबों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। गठन के ये दोनों प्रकार एक साथ भी किसी लंबी कविता में रह सकते हैं—एक दूसरे से टकराते हुए, एक दूसरे को पुष्ट और समृद्ध करते हुए। एक आख्यान और बिंब से शुरू करके विचार की दिशा में बढ़ सकता है, दूसरा विचार से शुरू करके बिंब-विधान की ओर। यह प्रक्रिया बिंब से बिंब की ओर या विचार से विचार की भी हो सकती है। वैसे बिंब और विचार का तनाव लंबी कविता की संरचना का मूल आधार है। तब यह बात विशेष महत्त्व नहीं रखती कि पहले बिंब विचार में बदला या विचार बिंब में। पाउंड 'कैंटोज़' के विधान में शुरू में लापरवाह दिखते हैं। संदर्भों, प्रसंगों, स्थितियों और परिस्थितियों को पहले एक अराजक विस्तार में उठाते हैं और बाद में उनमें किसी विचार-सूत्र की खोज में तल्लीन हो जाते हैं पर उनकी पद्धति, शुरू से अंत तक, कोरमकोर बिंबधर्मा है। इलियट शुरू से ही अपनी कविता 'वेस्टलैंड' में विधायक रूपक को तानते हैं पर वे रूपक के तनाव को काव्यात्मक स्थितियों पर हावी नहीं होने देते, विवरणों के संयोजन द्वारा वे तनाव को बीच-बीच में कम या ढीला करते जाते हैं, जिससे तनाव और स्थितियों में एक प्रकार का संतुलन आ जाता है। इलियट की लंबी कविताओं के विधान का यह एक विशेष गुण है। हिंदी की लंबी कविताओं में इस संरचनात्मक विशेषता को अपेक्षाकृत अधिक ग्रहण किया गया है। यों, दोनों ही प्रकार की अच्छी लंबी कविताओं के उदाहरण हिंदी में भी मौजूद हैं। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में आख्यान के सहारे सर्जनात्मक तनाव को बिंबात्मक रूप में प्रतिफलित किया गया है जबकि मुक्तिबोध की कविता—'अंधेरे में' में बिंब और विवरण पूरे काव्यात्मक विधान को संतुलित किए हुए हैं। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' आख्यान से बिंब की ओर प्रस्थान का उदाहरण है तथा राजकमल चौधरी की कविता 'मुक्ति प्रसंग'

तनाव को केंद्रीय विंब प्रतीक द्वारा संयमित करने का उदाहरण है।

लंबी कविता की अन्विति को प्रगीत के संदर्भ में रखकर अच्छी तरह से समझा जा सकता है। प्रगीत में अन्विति का जो रूप मान्य है, वह लंबी कविता के काम का नहीं। प्रगीत में आवयविक गठन का विशेष ध्यान रखा जाता है जबकि लंबी कविता में स्थितियों और संदर्भों का टकरावपूर्ण संयोजन रहने से आवयविक अन्विति अनावश्यक है। प्रगीत में अन्विति सीधी, सपाट सतह पर झलकती दिख जाती है — एक क्रम में, एक तर्क में, एक निष्कर्ष में ढली और परिणत हुई जब कि लंबी कविता अपने रचना-विधान में क्रम और निष्कर्ष का प्राय अतिक्रमण कर जाती है। दूसरे प्रगीत की संरचना, मुख्यत, भावमूलक या भावना प्रधान होती है जबकि लंबी कविता की संरचना में विचार या वैचारिक अनुभूति का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। मुक्तिबोध की लंबी कविताओं की बनावट से ही पता चल जाता है कि वे भाव द्वारा आस्फालित कविताएं नहीं हैं। वे अनुभूति और विचार के टकरावपूर्ण विन्यास के कारण अनिवार्यत लंबी हो गई कविताएं हैं। तीसरी बात, प्रगीत में संवेदना का स्वरूप आत्मपरक रहता है जबकि लंबी कविता में यथार्थ-परक। आत्मपरक कथ्य प्रगीत या छोटी कविता में समा जाता है पर यथार्थ की जटिल संवेदना को अभिव्यक्त करने के प्रयत्न में कविता के लंबी हो जाने की संभावना रहती है। पर यह कोई अटल नियम नहीं है। डॉ० नामवरसिंह ने ऐसी कविताओं की ओर (जिनमें से मुख्य हैं श्रीकांत वर्मा की 'समाधि लेख', रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध', राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग') संकेत किया है जो अपनी काव्यानुभूति में आत्मपरकता का आभास देते हुए भी वस्तुत संरचना में अप्रगीतात्मक हैं।[1] इस तरह लंबी कविता का प्रतिमान प्रगीत के प्रतिमान से भिन्न है। लंबी कविता पर छोटी कविता या प्रगीत की अन्विति के नियम लागू नहीं किए जा सकते। प्रगीतात्मक अन्विति की अभ्यस्त दृष्टि से इसका जायजा या विश्लेषण भी नहीं किया जा सकता।

लंबी कविता के रचना विधान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है—नाटकीयता। इसके बिना आज के जीवन की अंतर्विरोधों भरी स्थितियां उजागर नहीं हो सकती। स्थिति के पीछे की स्थितियों, व्यवहारों, मानसिक-आत्मिक क्रिया-कलापों को अभिव्यक्त करने के लिए नाटकीय विधान लंबी कविता के लिए जरूरी माना जा सकता है। कार्यों और व्यापारों को नाटकीय विधान में प्रस्तुत करके स्थितियों के अंतर्विरोधों का बोध जगाया जा सकता है। इसमें नाटकीय संवादों की योजना विशेष कारगर हो सकती है। लंबी कविता की संरचना में जिस गहरे कलात्मक संयम की आवश्यकता है, वह भी नाटकीय विधान द्वारा प्रभावी तौर पर संपन्न

1 द्रष्टव्य, डॉ० नामवरसिंह की पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान', पृ० 152

हो सकता है।

लंबी कविताओं की संरचना पर विचार करना जरूरी लगता है। इसके साथ रचना-प्रक्रिया और रचना-पद्धति संबंधी कई प्रश्न लिपटे हुए हैं। लंबी कविताओं की रचना-प्रक्रिया में से गुजरते हुए और उसकी प्रदीर्घता को लक्षित करते हुए स्वयं मुक्तिबोध ने यह प्रश्न उठाया है 'क्या उसको काट-छाँट कर छोटा कर दिया जाए या उसके भीतर जो बातें, जो गुत्थियाँ, जो समस्याएं प्रकट हुई हैं, उसके चित्रणात्मक विकास के लिए अवसर और क्षेत्र प्रदान किया जाए? दूसरे शब्दों में, क्या मेरी कविता के अन्तस्तत्त्वों को (अभिव्यक्ति के लिए) विकास का अवसर दिया जाए'?[1] इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं मुक्तिबोध ने लिखा है 'मैं उसको विकास और प्रसार का अवसर देने के पक्ष में हूं।'[2] काव्यानुभूति में निहित और उसके वृत्त को फैलाने-बढ़ाने वाली बातों, गुत्थियों और समस्याओं को, जिनकी वजह से वह कविता लंबी और बड़ी बन रही हो, अप्रासंगिक या असंबद्ध करार देकर, बाहर निकाल देने की सिफारिश करना या ऐसी प्रदीर्घता को काट-छाँटकर छोटा कर देना, पुरानी काव्य-दृष्टि का परिचय देना है और समस्या से कतराना है। लंबी कविता के संरचनात्मक विधान की शक्ति इसमें है कि उसके माध्यम से गौण समझी जाने वाली बातों, समस्याओं के ब्यौरों को केंद्रीय अनुभूति या विचार के संदर्भ में तान करके सार्थक बनाया जा सकता है और बिना किसी बाह्य अनुशासन के रचनात्मक संतुलन अर्जित किया जा सकता है। संरचना से जुड़ा दूसरा प्रश्न यह है कि लंबी कविताओं में कथाओं-आख्यानों, प्रसंगों संदर्भों, तथ्यों उद्धरणों को कैसे नियोजित किया जाए? उनका रचनात्मक संतुलन और संयोजन मूल संवेदना या विचार से कैसे बैठाया जाए? क्या लंबी कविताओं में इनकी अलग सत्ताएं कायम रहें या कविता की विधायक रूपात्मक चेतना में घुल जाएं या उसी को प्रतिभासित करें? लंबी कविताओं में कथाओं, संदर्भों, संकेतों, प्रसंगों और उद्धरणों के विवरण और चित्रण रह सकते हैं। पर इन तमाम प्रसंगों और संदर्भों द्वारा एकजुट रूप में कविता के नाभिक केंद्र पर आघात पड़ना चाहिए, उनकी अलग-थलग चमक नहीं दिखनी चाहिए। अनपेक्षित कथागत विस्तार और तथ्यगत सूचियाँ, विधायक अन्तर्चेतना से संबद्धता के अभाव में लंबी कविता के लिए घातक हो सकती हैं। इनका उपयोग और सार्थकता तभी है अगर इन्हें कविता के संवेदना वृत्त और विचार वस्तु के संदर्भ में कसकर नियोजित किया जाए। रचनागत शैथिल्य या लापरवाही लंबी कविता को ले डूबती है। अभिव्यक्ति का अपव्यय—अतिकथन और अतिरिक्त कथन इसमें कोढ़ की तरह चमकता रहता है। इसीलिए विभिन्न संरचनात्मक पहलुओं में संतुलन बनाये

1 मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी पृ॰ 26

2 वही, पृ॰ 26

रचना लम्बी कविता के लिए और भी जरूरी है।

लम्बी कविताओं के विन्यास में आनुषंगिक भावनाओं, विचारों, प्रसंगों और तथ्यों को काव्यात्मक संवेदना और केंद्रीय विचार के संदर्भ में रचना और तानना जरूरी है। ये सब काव्यात्मक अन्तर्चेतना से सम्बद्ध होकर तथा तनकर ही लम्बी कविता के विन्यास को समृद्ध करने में सहायक बनते हैं। इसके लिए कल्पनात्मक शक्ति की जरूरत है जिसके अभाव में लम्बी कविता अमूर्त और आडम्बरपूर्ण लग सकती है।[1] कल्पना द्वारा संदर्भों का अन्तर्गुम्फन और टकराव संभव बनता है, संवेदना का स्वरूप जटिल और उसके संदर्भ व्यापक बनते हैं। एक पद्धति यह है कि कवि मिथकीय संयोजन में, फैंटेसी के विधान में प्रवृत्त होता है और साथ ही रचनात्मक तनाव की स्थिति में 'अतीत प्रसंगों में प्रतिगमन कर जाता है और इस प्रकार अपनी अन्तर्यात्रा के असम्बद्ध से दिखने वाले पड़ावों, विवरणों और विशृंखल प्रतीत होने वाली भावानुभूतियों को काव्यात्मक संरचना में गूंथ देता है'।[2] हिंदी की विशिष्ट लम्बी कविताओं 'राम की शक्ति पूजा', 'प्रलय की छाया', 'मुक्ति प्रसंग' और 'अंधेरे में' में इस पद्धति का अच्छा प्रयोग हुआ है। दूसरी पद्धति है शब्दों के सामान्य अर्थों को उलट कर विरोधी भावों-विचारों की व्यंजना करना। वाल्ट व्हिट्मैन ने विरोधी भावों विचारों की ओर संकेत करते हुए अपनी एक कविता 'क्रासिंग ब्रुकलिन फेरी' में लिखा है 'आइ टु निटेड दि ओल्ड नॉट आफ कान्ट्रेरिटी।'[3] विभिन्न संदर्भों को भाषा द्वारा गहरा देने या शब्दों के परस्परित अर्थों को बदल देने या उलट देने मात्र से लम्बी कविता विशिष्ट बन सकती है जैसे रघुवीर सहाय की कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' या विजयदेव नारायण साही की कविता 'अलविदा'। कई बार केवल लय द्वारा इस संतुलन को साध लिया जाता है जैसे जयशंकर 'प्रसाद' की कविता 'प्रलय की छाया' में। आवृत्तियों में निहित विभिन्न प्रकार के अर्थ संबंधों के तालमेल की पहचान द्वारा भी काव्यात्मक व्यवस्था अर्जित की जा सकती है। 'अंधेरे में' और 'असाध्य वीणा' में इसे लक्षित किया जा सकता है।

हिंदी में लंबी कविता के इतिहास की शुरुआत कब से मानी जाए ? क्लासिकल

1 दि लांगर डिस्कर्सिव पोयट्री सीम्ज टु मी वेरी ऑफ्न डिफ्यूज्ड एण्ड टरगिड आपरेटिंग इदर बाद टु मेनी पर्टीकुलर टु लिटल एमेंड बार बाई ए रिटारिक टु एन्लार्ज फार दी फीलिंग होल्डर्ड लिमिटेशन पोयट्री एण्ड फिक्शन (रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू जर्सी 1963), पृ० 198

2 बाई रिग्रेशन अनअटच्ड इमोशन कैन बी इंटिग्रेटेड इटू ए पोइटिक स्ट्रक्चर स्टीफन ए० स्पैंक जर्नीज टु केऑस (प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिंसटन 1975), पृ० 132

3 एडविन फस्सेल ल्यूसिफर इन हार्नेस (प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिंसटन, 1973) पृ० 63 पर उद्धृत।

रचना-विधान की जकडबदी से मुक्त होने की छटपटाहट को कब से रेखांकित किया जाए ? क्या सुमित्रानंदन पंत की कविता 'परिवर्तन' से (कविता-संग्रह 'पल्लव', 1923) जयशंकर 'प्रसाद' की कविता 'प्रलय की छाया' से (कविता संग्रह 'लहर', 1933) अथवा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'राम की शक्ति पूजा' से (कविता-संग्रह 'अनामिका' 1937,) से। प्रारंभ म लबी कविताए महाकाव्यात्मक अपेक्षाओ से सबद्ध होकर ('प्रलय की छाया', राम की शक्ति पूजा') आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लेकर उदित हुई थी। हा, 'परिवर्तन' प्रारंभिक दौर की ऐसी कविता जरूर है जो किसी आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लिए बिना परिवर्तन सबधी धारणा को आवेशपूर्ण ढग से विचारात्मक रूप म अभिव्यक्त करती है। यह कविता कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, अपने विन्यास की दृष्टि से भी हिन्दी की पहली लबी कविता मानी जा सकती है।

छायावाद युग की लम्बी कविताए —'परिवर्तन','प्रलय की छाया,' और 'राम की शक्ति पूजा' (इन तीनो कविताओ के विस्तृत विश्लेषण के लिए देखिये मेरा निबन्ध 'आख्यान से बिम्ब से विचार तक की अन्तर्यात्रा' 'लम्बी कविताओ का रचना-विधान' दि मेकमिलन कपनी आफ इडिया लि०, दिल्ली, पृ० 9-11) उस दौर की कविताए हैं जब प्रबधात्मक रचना विधान को विशेष सम्मान प्राप्त था और उसके महत्व और प्रासगिकता के बारे मे किसी को सदेह नही था। ध्यान देने की बात है कि ये तीनो कविताए उन कवियो द्वारा रचित हैं जो छायावादी कविता के शीर्षस्थ कवि हैं। क्या इन लबी कविताओ की सरचना पर उनकी प्रगीतात्मक प्रतिभा और रोमैंटिक सस्कारो-रुझानो का प्रभाव नही पडा होगा ? यह प्रश्न भी हो सकता है कि इन कवियो ने अपनी कल्पना को प्रबधात्मक रूढिया से कैसे और कितना मुक्त रखा और लबी कविता के रूप म सिरजा ? इन कविताओ की रचना के दौरान ये कवि, निश्चय ही अपने रचनात्मक अभ्यासो और रचना शील मानसिकता से जूझे होंगे और उन्हे अपन अभ्यस्त प्रगीतात्मक रूप विधान की सीमाओ से बाहर आने या ऊपर उठने के लिए रचनात्मक तौर पर सघर्षरत होना पडा होगा। इस जूझने और सघर्षरत होन के दौरान, अपने को निर्ममता पूर्वक शोधने और सशोधित करने के बावजूद यह सभव है कि उनकी लबी कविताओ की सरचना मे प्रगीतात्मक और प्रबधात्मक रूढिया बनी रही हो। यह रचिगत बदलाव महज रूपगत बदलाव का परिणाम नही है, बल्कि सवेदना और विचार के बदलाव का भी सूचक है। छायावादी कवियो की रचना-प्रक्रिया का यह एक विशिष्ट बिंदु है कि वे प्रगीत और / या प्रबध जैसे रूप विधानो मे काव्य-सृजन के बावजूद, लबी कविता के रूप तथा विन्यास की ओर आकर्षित हुए।

हिंदी की प्रारंभिक लम्बी कविताओ में आख्यान का विशेष महत्व है। इसका कारण शायद यह है कि ये कविताए तब प्रबन्धात्मक ढाचे की जकडबन्दी से मुक्त

होने की कोशिश में उभरी थी, पर आख्यानों के काव्यात्मक संस्कार को और उनसे लिपटे हुए सांस्कृतिक अभिप्रायों को जो उनकी संवेदनाओं के रचनात्मक, सार्थक प्रतिफलन में सहायक हो सकते थे, छोड़ पाना उनके लिए कठिन था। आख्यान को उन्होंने पुराने वर्णनात्मक तरीके से नहीं बल्कि प्रतिगमन (रिग्रेसन) के विधान द्वारा अपनी कविताओं में ढाला है। निराला की लम्बी कविता 'राम की शक्ति पूजा' में मिथकीय संयोजन की संगति में उभर रही परस्पर गुम्फित भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों को देखा जा सकता है। पुराकथा का सर्जनात्मक विधान इस कविता में खण्डकाव्य या महाकाव्य के ढांचे के रूप में न होकर, लम्बी कविता के रूप में है। भावनाओं और मनोदशाओं के सान्निध्य और टकराव से यह कविता लम्बी हो गयी है। चरित्र और परिस्थिति के घात-प्रतिघात, राम के संशय और उद्विग्नता को उभारते हैं। राम की अंतश्चेतना से जुड़े प्रसंग (सीता का स्मरण) स्थिति को गहरा देते हैं। अतीत प्रसंगों में प्रतिगमन या प्रत्यावर्तन आनुषंगिक प्रसंगों, असम्बद्ध भावनाओं और बिम्बों को दृढ़तापूर्वक कविता की केंद्रीय स्थिति से जोड़ देते हैं।

छायावादी लम्बी कविताओं के बाद नरेश मेहता की 'समय देवता' और धर्मवीर भारती की 'प्रमथ्यु गाथा' जैसी लम्बी कविताएं नयी कविता आन्दोलन के दौरान लिखी गयीं जो तार्किक और भावनात्मक परिणतियों में ढली हुई हैं। इन दोनों कविताओं में नयी कविता के मानवतावादी आशयों की भरमार है। यहां आख्यान अपने स्थूल कथात्मक रूपों में न होकर या तो दृष्टिकोणों के हिस्से बने हुए हैं या बिम्बों में ढले हुए हैं। 'समय देवता' कविता में ज्ञान धारणात्मक सतह पर व्यक्त हुआ है, व्यापक जागरूकता के रूप में नहीं। ज्ञान यहां ज्ञानात्मक संवेदना या विचार में रूपांतरित होता हुआ नहीं दिखता। काव्यात्मक अभिप्राय है 'समय देवता/ऐसे समय तुम्हें मेरी पृथ्वी का परिचय प्राप्त हुआ है/जबकि युद्ध की पीलो के मुंह से हड्डी की गंध आ रही है/युद्धों के दर्रों में मानव लुटा हुआ सा आज एक मैदान चाहता है/और चाहता देश देश की अपनी कटी नदियों को जोड़ खेत में पानी देना'। इस अभिप्राय का सम्पूर्ण कविता में विधान करने वाली दृष्टि का यहां अभाव है। भर्त्सना और शुभाशंसा के स्वर यहां अलग अलग कथित हैं एक अच्छी कलात्मक बिंबात्मक कविता के बावजूद, यह कविता अपनी प्रकृति में धारणात्मक है वैचारिक नहीं। धर्मवीर भारती की कविता 'प्रमथ्युगाथा' में (कविता संग्रह सात गीत वर्ष, 1959) कथात्मक ब्यौरे बेशक नहीं हैं, पर पुरा-कथा के प्रमुख पात्रों की मन स्थितियों, मनोदशाओं को एक दूसरे के साथ सटा करके उनके क्रम विन्यास की पद्धति अपनायी गई है। यहां प्रमथ्यु, ध्रुपितर, अग्नि और गृद्ध सभी एक यातनापूर्ण स्थिति के बारे में अपना-अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं। इन वक्तव्यों द्वारा पात्रों की धारणाओं और मनोदशाओं की जानकारी तो

मिलती ही है, पुराकथा के सूत्र भी जुड़ने लगते हैं। स्थिति के बारे म पात्रगत दृष्टिकोणो का कथन किया गया है। ये दृष्टिकोण और इनसे जुडी व्याख्याए परस्पर उलझती या टकराती नही हैं, न ही किसी नाटकीय विधान म ढलती हैं। काव्यात्मक आशय की पहचान कविता के अंत की इन पक्तियों से हो सकती है 'कोई तो ऐसा दिन होगा/जब मेरे ये पीड़ा सिक्त स्वर/उसके मन को वेध मूर्छित प्रमथ्यु को जगाएगे।' कुल मिलाकर यह नई कविता का मानवतावादी आशय ही है।

प्रस्तुत सकलन म विगत 15-16 वर्षों म प्रकाशित और चर्चित दस विशिष्ट लम्बी कविताओ को लिया गया है। ये कविताए लम्बी कविताओ के तीसरे और समकालीन दौर की कविताए हैं। 'अज्ञेय' की 'असाध्य वीणा' से लेकर मणि मधुकर की 'घास का घराना' तक म समकालीन लम्बी कविता म उत्तरोत्तर उभरने वाले नये रूपो और स्तरो को पहचाना जा सकता है। इस दौर की लम्बी कविताए स्थिति के ब्यौरो तक सीमित नही रही हैं बल्कि वे स्थितियो को सघर्ष चेतना की ओर उन्मुख करने वाली हैं। इनकी बनावट बौद्धिक वृत्तियो से अनुशासित है या वैचारिक अनुक्रियाओ से। इनम आख्यान से बिम्ब से विचार तक जो अन्तर्यात्रा की गयी है वह इसके सरचनात्मक बिन्दुओ की खासियत को ही नही उभारती, ऐतिहासिक सगति और सार्थकता के बिन्दुओ को भी रेखाकित करती है।

'अज्ञेय' की लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' (कविता-सग्रह 'आगन के पार द्वार,' 1961), मुक्तिबोध की 'अधेरे मे' (कविता-सग्रह चाद का मुह टेढा है, 1964) और रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' (कविता सग्रह 'आत्म हत्या के विरुद्ध,' 1967) कविताओ का सगठन बौद्धिक है पर इनकी बौद्धिकता अलग अलग स्थिति, प्रेक्ष्य बिन्दु, टोन' और मुहावरे की वजह से बदल गई है। 'असाध्य वीणा' की बौद्धिकता तर्काश्रित है—कथा को एक निश्चित अनुक्रम म प्रस्तुत करने वाली। कविता मे से उभरने वाली, परस्पर टकराने वाली विचार पद्धति यहा नही है। यहा कविता म एक विचार को सिद्ध करने का प्रयास है। कविता विचारो के दबाव से नहीं, कथा के दबाव से आगे बढी है लबी हुई है। यहा सीधे-सादे रूप विधान मे कथा का एक सीधा अनुक्रम रखा गया है। यहा सपाट कथन पद्धति न होकर बिबधर्मिता है। छोटे-छोटे बिंब उभरते जाते हैं और कविता के विराट बिम्ब मे लय हो जाते हैं। पर मुक्तिबोध की कविता 'अधेरे म' मे ऐसा नहीं है। समाहार प्रवृत्ति यहा नही है। चीजो की सभावनाए यहा खत्म या अवरुद्ध नहीं हुई हैं बल्कि तनाव सूत्रो द्वारा बढती फैलती गयी हैं। यह कविता इतिहास को समाकलित करने वाली कविता ('पोयम इन्क्लूडिंग हिस्ट्री') है –

तथ्यों, घटनाओं या आकड़ों के रूप मे नही, अतरग साक्षी, परिप्रेक्ष्य, सवेदन और विचार के रूप मे। यहा आत्मिक स्मृतिया ऐतिहासिक स्मृतियों में फल गयी हैं, गुथ गयी हैं। इतिहास बोध की इस दृष्टि ने ही इस कविता मे यथार्थ की प्रकृति को जटिल और सश्लिष्ट बना दिया है। यथार्थ सबधी भावनाए और विचार यहा क्रमश खुलते गए हैं—आत्मपरक और वृहत्तर सदर्भ अतर-रूपान्तरित होते गये हैं। यह यथार्थ दृष्टि शिल्प और सरचना के नए विधान म ढल कर कविता म आए विवरणों, तथ्यों, सदर्भों और सकेतो को अर्थवत्ता प्रदान करती है तथा अराजक, असम्बद्ध दिखने वाले प्रसगों भावनाओं को केंद्रीय विचार से कसकर जोड देती है। बिखरे हुए सदर्भों को इतिहास सदर्भ म तान देने म मुक्तिबोध को सफलता प्राप्त हुई है।

रघुवीर सहाय की कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' एक वैचारिक लम्बी कविता है। इसके रचना-विधान म भावुकता लेश मात्र भी नही है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' में कवि स्थिति का निर्मम होकर जायजा लेता है और उसे पडतालता है, उससे भिडने के लिए अपनी शक्ति तोलता है। परिस्थिति से टकराने वाले व्यक्ति की वास्तविक स्थिति को यह कविता प्रत्यक्ष कर देने म समर्थ है 'कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूगा/न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर कायर टूटेगा टूट मेरे मन टूट एक बार सही तरह/अच्छी तरह टूट मत झूठ मूठ रूठ/मत डूब सिर्फ टूट ।' समकालीन राजनीतिक, साहित्यिक, सदर्भों और व्यक्तिवाची सज्ञाओं का प्रयोग इस कविता की एक अलग बानगी प्रस्तुत करता है। 'समय आ गया' की पुनरावृत्ति इस कविता के विधायक अत साक्ष्य को तथा बाहरी दुनिया से उसकी सगति को स्पष्ट करने की क्षमता रखती है।

समकालीन सदर्भ मे वैयक्तिक अनुभव को सामाजिक अनुभव की सन्निधि म रखने वाली तथा समूचे बाह्य यथार्थ को आतरिक स्तरों पर सृजित करने वाली लम्बी कविताएं भी लिखी गयी है। इनम राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसग' (कविता-सग्रह 'मुक्ति प्रसग', 1966) उल्लेखनीय है। इस कविता की सरचना म वैयक्तिक और सामाजिक स्थितिया और सदर्भ इस कदर अतर्सम्बद्ध है कि उन्हे अलग नही किया जा सकता। उनकी समानातर बुनाई विशेष कौशल से की गई है 'कोई शिकायत नही है मुझे उसमे कोई शिकायत नही है उन लोगों से मुझे/*जो न्यूजप्रिंट पर लिख रहे है मेरे देश का इतिहास/अथवा मेरे शरीर का आख्यान* टैम्प्रेचर चार्ट पर।' इस कविता म स्वतत्रता के बाद की भयावह स्थिति का मात्र चित्रण नही है उस स्थिति को भीतरी स्थिति के समानातर रखकर देखा गया है। इसी सदर्भ मे कवि बाहरी स्थितियो के दबाव म जकडी हुई अपनी अतरग पीडादायक सचाई को व्यक्त करता है 'कभी एक ही युद्ध मेरी कमर की हड्डिया म और कभी वियतनाम मे होता है।' इस स्थिति को सामाजिक राजनीतिक सदर्भ देकर

कवि ने स्थितिगत विसंगति को उभाड़ा है और उसे अधिक व्यापक और सघन बना दिया है। इस 'गतिहीन वर्तमान में' अपने 'होने के बावजूद न हो पाने' की विडंबना का यातनापूर्ण एहसास यहीं से उत्पन्न हुआ है। यह स्थिति या नियति का बखान नहीं, कविता में आज के आदमी की स्थिति या नियति का चरितार्थ होना है।

पर यह भी सही है कि 'मुक्ति प्रसंग' में वाग्मितापूर्ण कथन को गौरवान्वित किया गया है। स्थिति को चित्रित करने वाला मुहावरा यहां उत्तेजक और अत्युक्तिपूर्ण है। स्नायुविक तनाव में रचित होने के कारण इसमें स्थिति का भावुक आस्फालन भी हुआ है। इससे बचा जा सकता था अगर कविता के बीच-बीच में सार्थक विवरणों की योजना की जाती। भाषायी विन्यास में, वाक्य गठन और योजना में व्याप्त तनाव विवरणों द्वारा भी संतुलित हो सकता था पर कवि ने यह रास्ता नहीं चुना, उसने प्रतीक का रास्ता चुना है। इस कविता में संतुलन पैदा करने का साधन है—केंद्रीय प्रतीक—'उग्रतारा' है। यह प्रतीक 'रेहटरिक' को भी मानवीय स्थिति से जोड़ देता है। 'उग्रतारा' ऐसा ही केंद्रीय प्रतीक है। इस प्रतीक के माध्यम से अंतवर्ती एकसूत्रता को साधा गया है।

ऐतिहासिक संदर्भों की ठोस उपस्थिति में मौजूदा यथार्थ स्थिति के संदर्भ में मानवीय विडंबना और संघर्ष की चेतना का साक्षात्कार इधर की कई लंबी कविताओं में—धूमिल की कविता 'पटकथा'(कविता-संग्रह 'संसद से सड़क तक', 1972), बलदेव वंशी की कविता 'उपनगर में वापसी' (कविता-संग्रह . 'उपनगर में वापसी', 1974), अमृता भारती की कविता 'आज या कल या सौ बरस बाद,' (कविता संग्रह 'आज या कल या सौ बरस बाद,' 1975), लीलाधर जगूड़ी की कविता 'बलदेव खटिक' (कविता-संग्रह 'बची हुई पृथ्वी,' 1977), मणि मधुकर की 'घास का घराना' (कविता-संग्रह 'घास का घराना तथा अन्य कविताएं', 1978) देखा जा सकता है। हां, उनके संरचनात्मक बिंदु और संघर्ष-चेतना के स्तर अलग-अलग हैं। 'पटकथा' में आजादी के मोहक स्वप्न के टूटने, देश, जनता, जनतंत्र, देशभक्ति जैसी धारणाओं के भ्रष्ट और विघटित होने के परिणामस्वरूप पैदा हुई स्थिति के परिप्रेक्ष्य को ('टूटी हुई चीजों के ढेर में/खोई हुई आजादी का अर्थ/ढूंढता रहा'।) ग्रहण किया गया है। मूल्यगत विघटन के इस दौर में 'मैं' को महसूस होता है कि वह वक्त के एक शर्मनाक दौर से गुजर रहा है। उसे लगता है उन्होंने किसी चीज को सही जगह नहीं रहने दिया है। तभी उसका सामना अपने हमशक्ल से होता है जो उसे संघर्ष के लिए उकसाता है। और, उसे लगता है—'भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क/रोटी है' और वह उनको आकार देने में जुट जाता है। 'मैं' और 'हमशक्ल' के नाटकीय विधान के बिना यह कविता एक सामान्य कविता—ऐतिहासिक तथ्यों और स्थितियों का बयान करने वाली कविता

ही रह जाती। नाटकीय प्रसंग से पूर्व इस कविता में भी ब्यौरे अधिक हैं और रहटरिक का दबदबा है। इस अंश में 'परिदृश्यगत सघनता के साथ संयत अभिव्यक्ति के अनुशासन'[1] को कवि साध नहीं सका है। कविता के उत्तरार्द्ध में नाटकीय विधान के कारण सपाटबयानी विशिष्ट काव्यात्मक व्यवहारों में अवश्य चरितार्थ हुई है। विकल्प और 'पूंजीवादी दिमाग' की टकराहट भी यहीं उभरी है।

'उपनगर में वापसी' कविता में स्वतंत्रता परवर्ती ऐतिहासिक संदर्भ में व्यक्ति की विडंबनापूर्ण स्थिति और संघर्षशीलता का अच्छा चित्रण हुआ है। शहर के बनने और उठने के क्रम के साथ सोचते हुए शहरी संस्कृति के दबावों और तनावों को झेल रहे व्यक्ति की अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है। व्यक्ति की मनःस्थिति पर आघात देने वाली इस तरह की स्थितियों-परिस्थितियों का संयोजन कवि ने अत्यंत जागरूक होकर किया है और इस संयोजन में से ही संवेदना निष्पन्न हुई है 'पूरे उपनगर में वही एक स्वतंत्र है जो पागल है।' यहां स्थिति का मात्र चित्रण नहीं किया गया है बल्कि स्थिति सापेक्ष मनःस्थिति को व्यापक मानवीय चेतना में घुला देने का प्रयत्न भी किया गया है।

उपनगर की हैसियत में से ही यहां मानवीय स्थितियों की पीड़ा और करुणा उभरी है। जसवंत, भगतू, अमरू आदि पात्रों और उनसे संबद्ध प्रसंगों की नियोजना इस कविता को महत्त्वपूर्ण बना देती है। इनकी पीड़ा-यातना का संदर्भ आत्मगत न होकर सामाजिक-राजनीतिक ही है। एक ओर 'नेहरू युग का पागल' है जो गठरी सा पड़ा है 'योजनाओं के धमाके से उसी का/संतुलन उड़ा है,' दूसरी ओर 'बिना ब्याहों का लड़का भगतू कुबड़ा है 'इस समय वह धुआंधार भाषणों में कोमा सा व्यर्थ है।' ऐसे में कवि की चिंता है 'वस्तुओं का अस्तित्व आपस में टकरा कर आज/नहीं पैदा करता कोई तीसरा अस्तित्व'। कवि क्रम-क्रम में संघर्षशील मानसिकता को अर्जित करता गया है। कविता की अंतिम पंक्तियां हैं: 'मेन रोड पर चलता हुआ पागल सहसा बड़बड़ाता है/उपस्थितियों से लेकर उपदशाओं में फैले तंत्र में झूलते वर्तमान/विकृत घुलते हुए/फिर अपनी भीगी कमीज को निचोड़ कर/फटकारता हुआ/प्रायः चीखते हुए कहता है/कहां हो यार/उबकाई आ रही है/मूर्ख/जल्दी करो, दृश्य बदलो।'

इस कविता में नाटकीय क्रियाओं और व्यापारों का कौशलपूर्ण ढंग से प्रयोग हुआ है और इनके माध्यम से वैचारिक प्रतिफलन संभव हो सका है। एक ही व्यक्ति है—मुलम्मों परतों में ढका हुआ जिसे आंतरिक एकालाप की पद्धति से यहां पकड़ने की कोशिश की गई है। इस नाटकीय विधान के कारण काव्यगत प्रतिक्रियाएं भावुक, रूढ़ और सुनिश्चित होने से बच गई हैं।

---

1 नवलकिशोर चिति (अंक 3), पृ० 11

अमृता भारती की लम्बी कविता—'आज या कल या सौ बरस बाद' में वैयक्तिक और सामाजिक राजनीतिक सदर्भों का अन्तर्गुफन और टकरावपूर्ण विधान हुआ है। इस कविता में संघर्ष और विद्रोह की वैयक्तिक परिकल्पना से जुड़ी सामाजिक परिवर्तन की वाछा और उसके अन्तर्विरोध प्रकट हुए हैं। स्थितियों के जो विवरण कवयित्री ने यहा दिए हैं, वे बाह्य ससार को ही नहीं, एक जटिल और उलझे हुए अतरग ससार को भी उद्घाटित करते हैं और उन दोनो ससारो में तालमेल स्थापित करने का भी प्रयत्न करते हैं। ये विवरण तनाव की उत्कटता से विश्रान्ति दिलाकर काव्यगत तनाव को सघन और संतुलित भी करते हैं।

इस कविता में वैयक्तिक प्रसगो से कवयित्री मन पर छायी हुई करुणा व्यापक मानवीय चेतना के साथ जुड़ गयी है 'पत्थर की तरह बधी हुई करुणा,' कवयित्री जानती है कि बहुत बडा बोझ है पर उसे यह भी एहसास है कि यह बोझ 'तब तक मेरे कन्धे तोडता रहेगा/जब तक/मिट्टी में धसे मेरे पैर/पृथ्वी के एक बड़े हिस्से के साथ ऊपर नहीं उठते।' ये पक्तिया निरी आकाक्षा या बडबोली अभिव्यक्ति मात्र नहीं हैं। ये कवयित्री के सवेदनात्मक ज्ञान (सकल्प भी) का प्रतिफलित करती है। यहा अनुभव का तात्कालिक और वैयक्तिक सदर्भ सामाजिक सदर्भ में घुल गया है ('जलना/और किसी को जलते हुए देखना/इन दोनो की थाव/पता नहीं कब बराबर हो गयी।' सवेदनात्मक स्तरों पर चलने वाला यह अनुचिन्तन मानवीय आशयो को गहराने वाला है।

लीलाधर जगूडी ने कई लम्बी कविताएँ लिखी हैं पर 'बलदेव खटिक' के अलावा अन्य कोई कविता विशेष प्रभावित नहीं कर पाती। उन कविताओं में कवि के लिए उत्तेजना और तनाव में तमीज करना मुश्किल हो गया है। युक्तियों भरे बडबोले काव्य मुहावरे के कारण 'नाटक जारी है' एक असफल लम्बी कविता बन कर रह गयी है। पर 'बलदेव खटिक' एक विशिष्ट लम्बी कविता है। इसमें न किसी आख्यान का सहारा लिया गया है, न किसी फैंटेसी या बिम्ब का। इसके केन्द्र में एक ऐसा विचार है जो एक क्रूर समकालीन स्थिति को धीरे-धीरे उघाडता है और उसे सघर्ष चेतना से सम्बद्ध कर देता है। सवाल स्थिति को शब्दबद्ध करने का उतना नहीं है जितना यह कि 'इस वक्त कहा से लाये जायें ऐसे शब्द/जो हलफनामा बन सकें / जो तरफदारी कर सकें।' इसके लिए कवि ने रगतू और बलदेव खटिक जैसे ठोस और वास्तविक चरित्रो की सक्रिय सामाजिक सत्ताओं को उभारा है। दरअसल, ये चरित्र नहीं, प्रतिरोध के विचारो के साथ जुडी हुई विसगतियों और त्रासद अनुभवो के बाद किये जाने वाले निर्णयो के मूर्त रूप हैं। 'सवालो के जत्थो से भरा हुआ अकेला आदमी' (रगतू) अगर एक मानवीय दुर्घटना है तो सिपाही बलदेव खटिक की

स्थिति भी कम विडम्बनापूर्ण नहीं है 'उसकी छाती पर गोलियों का पट्टा है। उसके हाथ में एक एक बन्दूक है/उसे नहीं मालूम वह किसकी रक्षा कर रहा है।' वह उस पुलिस व्यवस्था का एक अदना-सा सिपाही है जो भ्रष्टता को बढ़ावा देती हुई अन्यायी और आततायी के पक्ष में चली जाती है। उसे ऐसी ही व्यवस्था की भ्रष्ट, मार्इयों और मानव-विरोधी कार्यवाहियों को पूरा करने में खपना पड़ता है। पर पुलिस का यही वफादार सिपाही एक दिन स्वयं को पुलिस के शिकंजे में असहाय सा पाता है। वह मां को अस्पताल दाखिल नहीं करा पाता और उसकी मां दम तोड़ देती है। वह वापस थाने आता है तो सरेआम भ्रष्टाचार देखता है। वह अपनी आंखों के सामने न्याय को मरता हुआ देखता है और अपना सन्तुलन खोकर पागलों मा व्यवहार करने लग जाता है। तनाव और आक्रोश की तीव्रतम अवस्था में 'वह धड़ाधड़ फायर करता है बन्दूक के बट को थाने की दीवार में मार कर/तोड़ देता है और सीढ़ियां उतर कर/सड़क पर मरे हुए कौवों को लांघकर फरार हो जाता है।' उसका इस तरह पागल हो जाना, निस्सन्देह, परिवेश की क्रूरता, भ्रष्टता और ओछी राजनीति का परिणाम है। इस मन स्थिति में उसकी उत्तेजक और आत्मघाती प्रतिक्रिया यह सूचित करती है कि उसे अपने दुश्मन की सही पहचान नहीं है। पर क्या यह कविता परिस्थिति के इस घिनौने और तल्ख सदर्भ के चित्रण तक सीमित रह गयी है? क्या विसंगति और विडम्बना के संकेतों से आगे यह कविता कोई संकेत नहीं देती? क्या यह कविता मात्र यह सुझाती है कि अभावग्रस्त पीड़ित और शोषित लोगों की मुक्ति का रास्ता मौत और पागलपन में से गुजरता है? हमें लगता है कि कवि स्थिति की विद्रूपता को उघाड़ते वाले स्पष्ट संकेत देता है क्यों कि वह जानता है कि विद्रोह की यह प्रक्रिया यहीं खत्म नहीं होगी—यह और भी तीव्रतर होगी—भ्रष्ट और आततायी व्यवस्था के प्रति और भी हिंसक क्योंकि 'देश में कुछ लोग, पेट से ही पागल होकर आ रहे हैं।' उन्हें अपने दुश्मनकी पहचान है, इसीलिए 'वे जब फायर करेंगे, तो यह तय है कि/इस बार कौवे नहीं मरेंगे।'

मणि मधुकर ने अनेक लम्बी कविताएं लिखी हैं पर अभी हाल ही में उनकी लम्बी कविताओं का एक कविता संग्रह 'घास का घराना तथा अन्य कविताएं' प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व 'खंड खंड पाखंड पर्व' नाम से उनकी एक लम्बी कविता पुस्तकाकार छप चुकी है। पर लम्बी कविता की अपेक्षाओं और प्रतिमानों पर 'घास का घराना' जितनी सही और खरी उतरती है उतनी उनकी अन्य कोई कविता नहीं। इस कविता में परिदृश्य चित्रण में से ही आत्मविडंबना-पूर्ण स्थितियों को उभरता हुआ दिखाया गया है। परिदृश्य को अंकित करने वाली दृश्यावली इस कविता को, निश्चय ही, एक ठोस सदर्भ प्रदान करती है पर इससे भी बढ़कर, ध्यान देने की बात यह है कि परिदृश्यगत ब्यौरे कवि के दृश्य निरूपण तक सीमित नहीं रहे हैं, वे पाठक को दृश्य के पार भी ले जाते हैं—दृश्य के रेशे-

रेशे को उघाडते हुए, उन्हे मानवीय व्यवहारो के रूप मे पेश कर देते हैं। परिदृश्य से लिपटी हुई स्थितिया अपनी अनुगूजा सहित, कवि के दृष्टिकोण को प्रतिफलित करती हुई उपस्थित हो जाती है। परिदृश्य और कवि दृष्टि इस कविता में इस तरह अनुस्यूत है कि उन्हे अलग कर पाना कठिन है। सार्थक ब्यौरो के बल पर कवि एक जानी-पहचानी परिस्थिति और देश-काल को मूर्त करने का प्रयत्न करता है। हताशा से भरी, विसगत और विडबनापूर्ण स्थितियो के यथार्थ को झेलते हुए भी कवि परास्त नहीं है। 'वह तलघर म नही, तमचे म घुसना पसन्द करता है ताकि बाजीगरो की बुनियाद को झकझोर सके।' निश्चय ही यह विद्रोही भाव को कायम रखने की आकाक्षा है। यही कविता का माहौल है और यह माहौल ही इस कविता की केंद्रीय धुरी है। स्थितिया, पात्र और उनकी टकराहट इसी माहौल म से उभरती है और यातना सदर्भों को अधिक तीव्र और सघन बनाती जाती है।

ब्यौरा और तनाव बिन्दुओ के इस सयोजन ने इस कविता को विशिष्ट बना दिया है। यातना के जिन विभिन्न सदर्भो का जिक्र कविता म हुआ हैं, वे सदर्भ केवल वैयक्तिक नही हैं। एक विशेष परिवेश मे जीते, मरते-खपते जन समूह की यातना का बोध जगाते हैं जो कही स्थितियो के चित्राकन के स्तर पर उभरी है तो कहीं पात्रो के रूप मे। राजस्थान के ठेठ रेतीले वातावरण को वहा की सामाजिक विषमता, शोषण और अत्याचारो को, मनुष्य की दारुण, यातनापूर्ण स्थितियो को, वहा के लोगो की निरीह, असहाय और उत्पीडित मन स्थितियो के सदर्भ मे रखकर यहा फैलाया और ताना गया है। रावगढी का सुमरू है जिसके पास अपने जख्मो का कोई सिलसिलेवार ब्यौरा नही है। सोटियो की मार से सूजी हुई उसकी कमर 'कभी फोडे की भाति टीसने लगती है/कभी मवाद म लिसफिस हो उठती है।' सुमरू की तरह सरजू, नरसी आदि अनेक पात्र हैं जो शोषको और पुलिस के अत्याचारो से पीडित, दबे, घुटे, सहमे एक के बाद एक कविता म आते गये हैं 'वे जुझारू जन/जिन्दा हैं पर उनके भीतर मौत पसरी हुई है। वे जीवन म जुताई मे शामिल हैं इसलिए मौत का नही जानते।' यह विडम्बना ही है कि जिनके कधो पर जनतत्र टिका है वे 'कतई नही जानते कि वे क्या हैं और क्यो हैं/उन्हे अपनी हैसियत अपनी ताकत की/कोई परवाह नही न ही यह मलाल कि/सालो साल व वेगारी में इस्तेमाल किये जा रहे हैं।'

कविता के अतिम अश म कवि का स्वर उग्र और निर्णयात्मक हो गया है। ध्यान देने की बात है कि यह उग्रता और निर्णयात्मकता उत्तेजना या हडबडी का परिणाम नहीं है इनके पीछे वास्तविक स्थितियो की तल्ख और क्रूर सच्चाइया हैं। स्वर की उग्रता और निर्णयात्मकता, चूकि, स्थितियो की विसगतियो और अन्तर्विरोधो को झलते हुए अर्जित की गई है, इसीलिए खरी और विश्वसनीय लगती है। 'अत मैं भूल नही पाता यह सब। रफ्ता-रफ्ता ही सही मुझे इस बदसलूकी

का बदला लेता है। एकराज के उच्चारण से एकाग्र होता है।' यह निर्णय वास्तविक स्थितियों की कवि की पहचान से विच्छिन्न नहीं है, बल्कि उसी से उत्प्रेरित है और संघर्ष चेतना में पैनी जाने की गवाही देता है। वह जानता है कि शोषितों और पीड़ितों के 'पास खोने के लिए कुछ नहीं है। अपनी विवशता और उदासी के सिवा।' कवि को 'उनके दमखम और दुस्साहस पर भरोसा है।' उसे विश्वास है कि 'जिस दिन वे तय कर लेंगे कि 'अब और गवारा नहीं' बन्दूक के घोड़ों को साजगी से सकील करने के लिए निकल आयेंगे।' स्थितियों के दमघोंटू होने के बावजूद मनुष्य की और मानवीय सरोकार की रक्षा हेतु बदलाव के लिए अनवरत विद्रोह और संघर्ष ही एक मात्र विकल्प बचता है और इसमें सन्देह नहीं कि मणि मधुकर ने इसे विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत किया है।

लम्बी कविताओं के इस विकास क्रम में इस कविता के अनेक पहलू विविध रूप और स्तर उद्घाटित हुए हैं। इनके, स्पष्टतः तीन दौर लक्षित किए जा सकते हैं—छायावादी लम्बी कविताएं नयी कविता आन्दोलन के दौरान रचित लम्बी कविताएँ और सन् साठ के बाद की समकालीन लम्बी कविताएं। पहले दौर में आख्यानक तत्त्व केन्द्र में रहा है दूसरे दौर में बिम्ब और तीसरे दौर में विचार। समकालीन लम्बी कविताओं में आख्यान अपने स्थूल रूप में महत्त्वहीन होता गया है विचार और स्थिति केन्द्र में आ गयी हैं और आख्यानक तत्त्व वैचारिक या फैंटेसीगत सत्ता में विलीन होता गया है। इनमें ऐतिहासिक-राजनीतिक प्रसंगों-सन्दर्भों के सन्निधीकरण के द्वारा केंद्रीय विचार या स्थिति में गर्भित संघर्ष को तीव्रतर किया गया है जिससे लम्बी कविता के रचना विधान में वैचारिक सक्रियता बढ़ी है जिस से मानवीय विडम्बना और संघर्षशीलता से निष्पन्न तनाव के विविध रूप इधर की लम्बी कविताओं में अभिव्यक्त हो सके हैं। विचार और बिम्ब का समायोजन और संतुलन इन समकालीन लम्बी कविताओं के एक खास पहलू के रूप में उभरा है।

—नरेन्द्र मोहन

असाध्य वीणा

'अज्ञेय' (स० ही० वात्स्यायन)

जन्म : सन् 1911, कसिया (उ० प्र०)

कृतियां :

कविता-संग्रह	भग्नदूत (1933), चिन्ता (1942), इत्यलम (1946), हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनु रौंदे हुए (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आंगन के पार द्वार (1961), क्योंकि मैं उसे जानता हूं (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974), 'महा वृक्ष के नीचे' (1977)
उपन्यास	शेखर एक जीवनी—प्रथम भाग (1940-41), द्वितीय भाग (1944), नदी के द्वीप (1951), अपने अपने अजनबी (1961)
कहानी-संग्रह	विपथगा (1937), परम्परा (1944) कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948) जयदोल (1951), अमर वल्लरी (1954), ये तेरे प्रतिरूप (1961)
आलोचना	त्रिशंकु (1945), आत्मनेपद (1960)
यात्रावृत्त	अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूंद सहसा उछली (1960)
सम्प्रति	'नया प्रतीक' मासिक का संपादन।
पता	110, गोल्फ लिंक, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

प्रस्तुत कविता 'असाध्य वीणा' (1961) कवि के कविता-संग्रह 'आंगन के पार द्वार' में संकलित है।

उसकी करि-शुण्डों-सी डालें
हिम-वर्षा से पूरे वन यूथों का कर लेती थीं परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उसके वल्कल से कन्धे खुजलाने आते थे।
और—सुना है—जड़ उसकी जा पहुंची थी पाताल लोक,
उसकी गन्ध-प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता था।

उसी किरीटी तरु से वज्रकीर्ति ने
सारा जीवन इसे गढ़ा
हठ साधना यही थी उस साधक की—
वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन-लीला।"
राजा रुके, सांस लम्बी लेकर फिर बोले
"मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सबकी विद्या हो गयी अकारथ, दर्प चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ्र तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा स्वर सिद्ध गोद में लेगा।
तात! प्रियंवद! लो, यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा,
यह मैं, यह रानी, भरी सभा यह
सब उदग्र, पर्युत्सुक,
जन-मात्र प्रतीक्षमाण!"

केशकम्बली गुफा गेह ने खोला कम्बल।
धरती पर चुपचाप बिछाया।
वीणा उस पर रख पलक मूंदकर, प्राण खींच,
करके प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तार।
धीरे बोला "राजन! पर मैं तो
कलावन्त हूं नहीं, शिष्य साधक हूं—
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।

वज्रकीर्ति !
प्राचीन किरीटी-तरु !
अभिमन्त्रित वीणा !
ध्यान मात्र इनका तो गदगद विह्वल कर देने वाला है।

चुप हो गया प्रियंवद।
सभा भी मौन हो रही।
वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया।

धीरे धीरे झुक उस पर तारों पर मस्तक टेक दिया।
सभा चकित थी—अरे, प्रियंवद क्या सोता है ?
केशकम्बली अथवा हो कर पराभूत
झुक गया वाद्य पर ?
वीणा सचमुच क्या है असाध्य ?

पर उस स्पंदित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा—
नहीं स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड़ में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी-तरु को।
कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे ?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन भर की साधना रही ?
भूल गया था केशकम्बली राज-सभा को
कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिसमें साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी-तरु
जिसकी जड़ वासुकी के फन पर थी आधारित,
जिसके कंधों पर बादल सोते थे
और कान में जिसके हिमगिरि कहते थे अपने रहस्य।
संबोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद।

"ओ विशाल तरु !
शत सहस्र पल्लवन पतझरों ने जिसका नित रूप सवारा
कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौरे कर गये गुजरित,
रातों म झिल्ली ने
अनथक मगल गान सुनाये,
साझ सवेरे अनगिन
अनचीन्हे खग-कुल की मोद भरी क्रीडा—काकलि
डाली डाली को कपा गयी—
ओ दीर्घकाय !
ओ पूरे झारखण्ड के अग्रज
तात, सखा, गुरु आश्रय,
त्राता महच्छाय,
ओ व्याकुल मुखरित वन-ध्वनियों के
वृन्दगान के मूर्त्त रूप
मैं तुझे सुनू
देखू, ध्याऊ
अनिमिष, स्तब्ध, सयत, सयुत, निर्वाक्
कहा साहस पाऊ
छू सकू तुझे
तेरी काया को छेद बाधकर रची गयी वीणा को
किस स्पर्द्धा से
हाथ करे आघात
छीनने को तारों से
एक चोट मे वह सचित सगीत जिसे रचने मे
स्वय न जाने कितनों के स्पन्दित प्राण रच गये !

"नहीं, नहीं ! वीणा यह मेरी गोद रखी है, रहे,
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोद बैठा मोद भरा बालक हू,
ओ तरु तात ! सभाल मुझे,
मेरी हर किलक
पुलक मे डूब जाय
मै सुनू,

सुनूँ
विस्मय से भर आँकूँ
तेरे अनुभव का एक-एक अन्तःस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय —
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।

"गा तू !
यह वीणा रक्खी है : तेरा अंग-अपंग !
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म-भरित,
रस विद्,
तू गा :
मेरे अँधियारे अन्तस् में आलोक जगा
स्मृति का
श्रुति का —
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा !

"हाँ, मुझे स्मरण है :
बदली — कौंध — पत्तियों पर वर्षा बूँदों की पटपट।
घनी रात में महुए का चुप-चाप टपकना।
चौंके खग-शावक की चिहुँक।
शिलाओं को दुलराते वन-झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद।
कुहरे में छनकर आती
पर्वती गाँव के उत्सव-ढोलक की थाप।
गड़रिये की अनमनी बाँसुरी।
कठफोड़े का ठेका। फुलसुँघनी की आतुर फुरकन।
ओस-बूँद की ढरकन — इतनी कोमल, तरल कि झरते-झरते मानो
हरसिंगार का फूल बन गयी।
भरे शरद के ताल-लहरियों की सरसर ध्वनि।
कूँजों का क्रेंकार। काँद लम्बी टिट्टिभ की।
पंख युक्त सायक-सी हंस बलाका।
चीड़ वनों में गन्ध-अन्ध उन्मद मतंग की जहाँ-तहाँ टकराहट

जल-प्रपात का प्लुत एक स्वर।
झिल्ली दादुर, कोकिल-चातक की झनकार-पुकारों की यति म
ससृति की साय-साय।

"हां, मुझे स्मरण है।
दूर पहाड़ों से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मानो चिंघाड रहा हो यूथ।
घरघराहट चढ़ती बहिया की।
रेतीली कगार का गिरना छप्-छड़ाप।
झंझा की फुफकार, तप्त,
पेड़ों का अररा कर टूट-टूटकर गिरना।
ओले की कर्री चपत।
जमे पाले से तनी कटारी-सी सूखी घासों की टूटन।
ऐंठी मिट्टी का स्निग्ध घाम में धीरे-धीरे रिसना।
हिम तुषार के फाहे धरती के घावों को सहलाने चुप चाप।
घाटियों में भरती
गिरती चट्टानों की गूंज—
कांपती मन्द्र गूंज—अनुगूंज—सांस खोयी-सी, धीर धीरे नीरव।

"मुझे स्मरण है
हरी तलहटी म, छोटे पेड़ों की ओट, ताल पर
बंधे समय वन-पशुओं की नानाविध आतुर-तृप्त पुकारें
गर्जन, घुर्घुर, चीख, भूंक, हुक्का, चिचियाहट।
कमल कुमुद पत्रों पर चोर पैर द्रुत धावित
जल पंछी की चाप।
थाप दादुर की चकित छलांगों की।
पन्थी के घोड़े की टाप अधीर।
अचंचल धीर थाप भैंसों के भारी खुर की।

"मुझे स्मरण है
उझक क्षितिज से
किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस-बूंद को
उस क्षण की सहसा चौंकी सी सिहरन।

और दुपहरी में जब
घास फूल अनदेखे खिल जाते हैं
मौमाखियाँ असंख्य झूमती करती हैं गुंजार—
उस लम्बे विलमे क्षण का तन्द्रालस ठहराव।
और साँझ को
जब तारों की तरल कँपकँपी
स्पर्शहीन झरती है—
मानो नभ में तरल-नयन ठिठकी
नि:संख्य सवत्सा युवती माताओं के आशीर्वाद —
उस सन्धि निमिष की पुलकन लीयमान।

"मुझे स्मरण है
और चित्र प्रत्येक
स्तब्ध विजड़ित करता है मुझको।
सुनता हूँ मैं
पर हर स्वर-कम्पन लेता है मुझको मुझसे सोख—
वायु-सा नाद-भरा मैं उड़ जाता हूँ।
मुझे स्मरण है—
पर मुझको मैं भूल गया हूँ
सुनता हूँ मैं —
पर मैं मुझसे परे, शब्द में लीयमान।

"मैं नहीं, नहीं! मैं कहीं नहीं!
ओ रे तरु! ओ वन!
ओ स्वर-सँभार!
नाद मय संसृति!
ओ रस प्लावन!
मुझे क्षमा कर—भूल अकिंचनता को मेरी—
मुझे ओट दे—ढँक ले—छा ले
ओ शरण्य!
मेरे गूँगेपन को तेरे सोये स्वर-सागर का ज्वार डुबा ले।
आ, मुझे भुला,
तू उतर बीन के तारों में
अपने से गा—

अपने को गा
अपने खग-कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियों को ताल बाँध
अपने छायातप, वृष्टि-पवन, पल्लव-कुसुमों की लय पर
अपने जीवन-संचय को कर छन्दयुक्त,
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे!
तू गा, तू गा—
तू सन्निधि पा—तू खो
तू आ—तू हो—तू गा! तू गा!

राजा जागे।
समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था—
काँपी थीं उँगलियाँ।
अलस अँगड़ाई लेकर मानो जाग उठी थी वीणा
किलक उठे थे स्वर-शिशु।
नीरव पद रखता जालिक मायावी
सधे करों से धीरे धीरे धीरे
डाल रहा था जाल हेम तारों का।

सहसा वीणा झनझना उठी—
संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघली ज्वाला-सी झलक गयी
रोमांच एक बिजली-सा सबके तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयम्भू
जिसमें सोता है अखण्ड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।

डूब गये सब एक साथ।
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे।
राजा ने अलग सुना
जयदेवी यश:काय
वरमाल लिये
गाती थी मंगल-गीत

दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी
राज मुकुट सहसा हलका हो आया था, मानो हो फूल सिरिस का।
ईर्ष्या, महदाकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े से झर गये, निखर आया था जीवन-कांचन
धर्मभाव से जिसे निछावर वह कर देगा।

रानी ने अलग सुना
छटती बदली में एक कौंध कह गयी—
तुम्हारे ये मणि माणिक, कंठहार, पट-वस्त्र,
मेखला किंकिणि—
सब अन्धकार के कण हैं ये! आलोक एक है
प्यार अनन्य! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस-भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर, उसमें छिप कर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास-भरी।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी।

सबने भी अलग-अलग संगीत सुना।
इसको
वह कृपा-वाक्य था प्रभुओं का—
उसको
आतंक मुक्ति का आश्वासन·
इसको
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक—
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुदबुद।

किसी एक को नयी वधू की सहमी सी पायल ध्वनि।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल-फँसी मछली की तड़पन—
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल, ग्राहकों की आस्पर्धा भरी बोलियाँ,
चौथे को मन्दिर की ताल युक्त घंटा-ध्वनि।

और पाचवें को लोहे पर सधे हथौड़े की सम चोटें
अठारहें को लगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की अविराम थपक ।
बटिया पर चमरौधे की रुँधी चाप सातवें के लिए—
और आठवें को कुलिया की कटी मेड़ से बहते जल की छुल छुल ।

इसे गमक नट्टिन की एड़ी के घुंघरूँ की—
उसे युद्ध का ढोल
इसे सझा-गोधूली की लघु टुन टुन —
उसे प्रलय का डमरू-नाद ।
इसको जीवन की पहली अगडाई
पर उसका महाजृम्भ विकराल काल !
सब डूबे, तिरे, झिपे, जागे—
हो रहे वशवद, स्तब्ध
इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी,
सघीत हुई,
पा गयी विलय ।
वीणा फिर मूक हो गयी ।

"साधु ! साधु !"
राजा सिंहासन से उतरे—
रानी ने अर्पित की सतलडी माल,
जनता विह्वल कह उठी ' धन्य !
हे स्वरजित् ! धन्य ! धन्य !"

सगीतकार,
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक—मानो
गोदी म सोये शिशु को पालने डाल कर मुग्धा माँ
हट जाय, पीठ से दुलराती—
उठ खड़ा हुआ ।
बढ़ते राजा का हाथ उठा करता आवर्जन,
बोला
' श्रेय नही कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वय शून्य मे—
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने

सब-कुछ को सौंप दिया था—
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी—
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।"

नमस्कार कर मुड़ा प्रियंवद केशकम्बली। लेकर कम्बल गेह-गुफा को चला गया।
उठ गयी सभा। सब अपने-अपने काम लगे।
युग पलट गया।

प्रिय पाठक! यों मेरी वाणी भी
मौन हुई।

अंधेरे में

गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

जन्म : सन् 1917, शिवपुरी (ग्वालियर) मृत्यु : सन् 1964

कृतियां :

कविता संग्रह : चांद का मुंह टेढ़ा है।

उपन्यास : विपात्र

कहानी-संग्रह : काठ का सपना, सतह से उठता आदमी

आलोचना : कामायनी : एक पुनर्विचार, एक साहित्यिक की डायरी, नयी कविता और आत्म संघर्ष, नयी कविता का सौंदर्य-शास्त्र

प्रस्तुत कविता 'अन्धेरे में' (1964) मुक्तिबोध के कविता-संग्रह 'चांद का मुंह टेढ़ा है,' में संकलित है।

[अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी बाँहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक]

अंधेरे में

जिन्दगी के ··
कमरों में अन्धेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार,
आवाज़ पैरों की देती है सुनाई
बार-बार   बार-बार,
वह नहीं दीखता नहीं ही दीखता,
किन्तु, वह रहा घूम
तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक,
भीत-पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अन्धकार ध्वनि-सा
अस्तित्व जनाता
अनिवार कोई एक,
और मेरे हृदय की धक्-धक्
पूछती है—यह कौन
सुनाई जो देता, पर नहीं देता दिखाई !
इतने में अकस्मात् गिरते हैं भीत से
फूले हुए पलस्तर,
खिरती है चूने-भरी रेत
खिसकती हैं पपड़ियां इस तरह—
खुद-ब-खुद
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,

48 . कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवाल पर,
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
दृढ़ हनु,
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति।
कौन वह दिखाई जो देता, पर
नहीं जाना जाता है !!
कौन मनु ?

बाहर शहर के, पहाड़ी के उस पार तालाब •
अँधेरा सब ओर
निस्तब्ध जल,
पर, भीतर से उभरती है सहसा
सलिल के तम श्याम शीशे में कोई श्वेत आकृति
कुहरीला कोई बड़ा चेहरा फैल जाता है
और मुसकाता है,
पहचान बताता है
किन्तु, मैं हतप्रभ,
नहीं वह समझ में आता।

अरे ! अरे !!
तालाब के आस पास अँधेरे में वन-वृक्ष
चमक-चमक उठते हैं हरे-हरे अचानक
वृक्षों के शीश पर नाच-नाच उठती हैं बिजलियाँ,
शाखाएँ, डालियाँ झूमकर झपट कर
चीख एक दूसरे पर पटकती हैं सिर कि अकस्मात्—
वृक्षों के अँधेरे में छिपी हुई किसी एक
तिलस्मी खोह का शिला द्वार
खुलता है धड़ से
.... .
घुसती है लाल लाल मशाल अजीब सी
अन्तराल विवर के तम में
लाल लाल कुहरा

कुहरे में, सामने, रक्तालोक स्नात पुरुष एक,
रहस्य साक्षात् !!

तेजो प्रभामय उसका ललाट देख
मेरे अंग अंग में अजीब एक थरथर।
गौरवर्ण, दीप्त दृग, सौम्य मुख
सम्भावित स्नेह-सा प्रिय-रूप देखकर
विलक्षण शंका,
भव्य आजानुभुज देखते ही साक्षात्
गहन एक सन्देह।

वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज सम्भावनाओं, निहित प्रभाओं, प्रतिमाओं की,
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह
आत्मा की प्रतिमा।
प्रश्न थे गम्भीर, शायद खतरनाक भी,
इसलिए बाहर के गुंजान
जंगलों से आती हुई हवा ने
फूंक मार एकाएक मशाल ही बुझा दी —
कि मुझको यों अन्धेरे में पकड़कर
मौत की सज़ा दी।

किसी काले डैश की घनी काली पट्टी ही
आंखों में बंध गयी,
किसी खड़ी पाई की सूली पर मैं टांग दिया गया,
किसी शून्य बिन्दु के अंधियारे खड्डे में
गिरा दिया गया मैं
अचेतन स्थिति में।

[2]

सूनापन सिहरा,
अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले उभरे,

शून्य में मुख पर सरसरे स्वर की,
मेरे ही उर पर, धसती हुई सिर,
छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें
मीठी है दुःसह !!
अरे, हाँ, सांकल ही रह-रह
बजती है द्वार पर।
कोई मेरी बात मुझे बताने के लिए ही
बुलाता है   बुलाता है
हृदय को सहला मानो किसी जटिल
प्रसंग में सहसा होठों पर
होठ रख, कोई सच-सच बात
सीधे-सीधे कहने को तड़प जाय, और फिर
वही बात सुनकर धँस जाय मेरा जी —
इस तरह, सांकल ही रह-रह बजती है द्वार पर
आधी रात, इतने अन्धेरे में, कौन आया मिलने ?
विमल प्रतीक्षातुर कुहरे में घिरा हुआ
द्युतिमय मुख — वह प्रेम भरा चेहरा
भोला-भाला भाव —
पहचानता हूँ बाहर जो खड़ा है!!
यह वही व्यक्ति है, जी हाँ !
जो मुझे तिलस्मी खोह में दिखा था।
अवसर-अनवसर
प्रकट जो होता रहता
मेरी सुविधाओं का न तनिक खयाल कर।
चाहे जहाँ, चाहे जिस समय उपस्थित
चाहे जिस रूप में
चाहे जिन प्रतीकों में प्रस्तुत,
इशारे से बताता है, समझाता रहता,
हृदय को देता है बिजली के झटके !!
अरे, उसके चेहरे पर खिलती हैं सुबहें,
गालों पर चट्टानी चमक पठार की
आँखों में किरणीली शान्ति की लहरें,
उसे देख, प्यार उमड़ता है अनायास !
लगता है — दरवाजा खोलकर

बाहों मे कस लू
हृदय मे रख लू
घुल जाऊ, मिल जाऊ, लिपट कर उससे
परन्तु, भयानक खड्डे के अन्धेरे मे आहत
और क्षत विक्षत, मैं पडा हुआ हू,
शक्ति ही नही है कि उठ सकू जरा भी
(यह भी तो सही है कि
कमजोरियो से ही लगाव है मुझको)
इसीलिए टालता हू उस मेरे प्रिय को
कतराता रहता हू,
डरता हू उससे।
वह बिठा देता है तुग शिखर के
खतरनाक, खुरदरे कगार-तट पर
शोचनीय स्थिति मे ही छोड देता मुझको।
कहता है—"पार करो पर्वत-सन्धि के गह्वर,
रस्सी के पुल पर चलकर
दूर उस शिखर-कगार पर स्वय ही पहुचो"
अरे भाई, मुझे नही चाहिए शिखरो की यात्रा,
मुझे डर लगता है ऊचाइयो से
बजने दो साकल!!
उठने दो अधेरे मे ध्वनियो के बुलबुले,
वह जन वैसे ही
आप चला जायेगा आया था जैसा।
खड्डे के अधेरे मे मैं पडा रहूगा
पीडाए समेटे!!
क्या करू, क्या नही करू मुझे बताओ,
इस तम-शून्य मे तैरती है जगत्-समीक्षा
की हुई उसकी
(सह नही सकता)
विवेक विक्षोभ महान् उसका
तम अन्तराल मे (सह नही सकता)
अधियारे मुझमे द्युति-आकृति-सा
भविष्य का नक्शा दिया हुआ उसका
सह नही सकता!!

नहो नहो, उसको मैं छोड नही सकूगा,
सहना पडे–मुझे चाहे जो भले ही।

कमजोर घुटनो को बार-बार मसल,
लडखडाता हुआ मैं
उठता हू दरवाजा खोलने,
चेहरे के रक्तहीन विचित्र शून्य को गहरे
पोछता हू हाथ से,
अधेरे में ओर-छोर टटोल-टटोलकर
बढता हू आगे,
पैरो में महसूस करता हू धरती का फैलाव,
हाथो मे महसूस करता हूँ दुनिया,
मस्तक अनुभव करता है, आकाश,
दिल में तडपता है अन्धेरे का अन्दाज,
आखें ये तथ्य को सूघती-सी लगती,
केवल शक्ति है स्पर्श की गहरी।
आत्मा मे, भीषण
सत् चित् वेदना जल उठी, दहकी।
विचार हो गये विचरण-सहचर।
बढता हूँ आगे,
चलता हू सभल सभल कर,
द्वार टटोलता,
जग खायी, जमी हुई जबरन्
सिटकनी हिलाकर
जोर लगा, दरवाजा खोलता
झांकता हू बाहर

सूनी है राह, अजीब है फैलाव,
सर्द अन्धेरा।
ढीली आखो से देखते हैं विश्व
उदास तारे।
हर बार सोच और हर बार अफसोस
हर बार फिक्र
के कारण बढे हुए दर्द का मानो कि दूर वहा, दूर वहा

अधियारा पीपल देता है पहरा।
हवाओ की निसग लहरो मे कापती
कुत्तो की दूर-दूर अलग-अलग आवाज,
टकराती रहती सियारो की ध्वनि से।
कापती हैं दूरिया, गूजते हैं फासले
(बाहर कोई नही, कोई नही,बाहर)

इतने म अधियारे सूने म कोई चीख गया है
रात का पक्षी
कहता है—
"वह चला गया है,
वह नही आयेगा, आयेगा ही नही
अब तेरे द्वार पर।
वह निकल गया है गाव म शहर मे।
उसको तू खोज अब
उसका तू शोध कर!
वह तेरी पूर्णतम परम अभिव्यक्ति,
उसका तू शिष्य है (यद्यपि पलातक)
वह तेरी गुरु है
गुरु है…"

[3]

समझ न पाया कि चल रहा स्वप्न या
जाग्रति शुरू है।
दिया जल रहा है,
पीतालोक-प्रसार मे काल चल रहा है,
आस पास फैली हुई जग-आकृतिया
लगती हैं छपी हुई जड चित्राकृतिया-सी
अलग व दूर-दूर
निर्जीव!!
यह सिविल लाइन्स है। मैं अपने कमरे म
यहा पडा हुआ हू।
आखें खुली हुई है,
पीटे गये बालक-सा मार खाया चेहरा
उदास इकहरा,

स्लेट-पट्टी पर खींची गयी तसवीर
भूत-जैसी आकृति—
क्या वह मैं हूं ?
मैं हूं ?

रात के दो हैं,
दूर-दूर जंगल में सियारों का हो-हो,
पास-पास आती हुई घहराती गूंजती
किसी रेलगाड़ी के पहियों की आवाज़ !!
किसी अनपेक्षित
असम्भव घटना का भयावह सन्देह,
अचेतन प्रतीक्षा,
कहीं कोई रेल-एक्सीडेन्ट न हो जाय।
चिन्ता के गणित अंक
आसमानी-स्लेट-पट्टी पर चमकते
खिड़की से दीखते।

हाय ! हाय ! तॉल्स्तॉय
कैसे मुझे दीख गये
सितारों के बीच बीच
घूमते व रुकते
पृथ्वी को देखते।

शायद तॉल्स्तॉय नमा
कोई वह आदमी
और है,
मेरे किसी भीतरी धागे का आखिरी छोर वह
अनलिखे मेरे उपन्यास का
केन्द्रीय संवेदन
दबी हाय हाय-नुमा,
शायद, तॉल्स्तॉय-नुमा।

प्रोसेशन ?
निस्तब्ध नगर के मध्य-रात्रि-अंधेरे में सुनसान

किसी दूर बैण्ड की दबी हुई क्रमागत तान-धुन,
मन्द-तार उच्च-निम्न स्वर-स्वप्न,
उदास-उदास ध्वनि-तरंगें हैं गम्भीर,
दीर्घ लहरियाँ!!
गैलरी में जाता हूँ, देखता हूँ रास्ता
वह कोलतार-पथ अथवा
मरी हुई खिंची हुई कोई काली जिह्वा
बिजली के द्युतिमान् दिये या
मरे हुये दाँतों का चमकदार नमूना!!

किन्तु दूर सड़क के उस छोर
शीत भरे थर्राते तारों के अँधियाले तल में
नीले तेज-उद्भास
पास-पास पास-पास
आ रहा इस ओर!
दबी हुई गम्भीर स्वर-स्वप्न तरंगें,
शत ध्वनि-संगम-संगीत
उदास तान धुन
समीप आ रहा!!

और, अब
गैस-लाइट-पाँतों की बिन्दुएँ छिटकीं,
बीचों-बीच उनके
साँवला जुलूस-सा क्या-कुछ दीखता!!
गैस-लाइट किनारी में रंगे हुए अपार्थिव चेहरे,
बैण्ड-दल,
उनके पीछे काले-काले बलवान् घोड़ों का जत्था
दीखता,
घना व डरावना अवचेतन ही
जुलूस में चलता।
क्या शोभा-यात्रा
किसी मृत्यु-दल की?

अजीब!!

दोनों ओर, नीली गैस-लाइट पाँत
रही जल, रही जल !
नींद में खोये हुए शहर की गहन अवचेतना में
हलचल, पाताली तल में
चमकदार सांपों की उड़ती हुई लगातार
लकीरों की वारदात !!
सब सोये हुये हैं।
लेकिन, मैं जाग रहा, देख रहा
रोमांचकारी वह जादुई करामात !!

विचित्र प्रोसेशन
गम्भीर क्वीक मार्च
कलाबत्तू वाला काला जरीदार ड्रेस पहने
चमकदार बैण्ड दल—
अस्थि रूप, यकृत स्वरूप, उदर-आकृति
आंतों के जालों-से, बाजे वे दमकते हैं भयंकर
गम्भीर गीत स्वप्न-तरंगें।
उभारते रहते,
ध्वनियों के आवर्त मँडराते पथ पर।
बैण्ड के लोगों के चेहरे
मिलते हैं मेरे देखे हुओं से,
लगता है उनमें कई प्रतिष्ठित पत्रकार
इसी नगर के !!
बड़े-बड़े नाम अरे कैसे शामिल हो गये इस बैण्ड दल में !
उनके पीछे चल रहा
संगीन नोकों का चमकता जंगल,
चल रही पदचाप, ताल-बद्ध दीर्घ पाँत
टैंक-दल, मोर्टार, आर्टिलरी, सन्नद्ध,
धीरे-धीरे बढ़ रहा जुलूस भयावना,
सैनिक के पथराये चेहरे
चिढ़े हुये, झुलसे हुये, बिगड़े हुये गहरे !
शायद, मैंने उन्हें पहले भी तो कहीं देखा था।
शायद उनमें मेरे कई परिचित !!
उनके पीछे यह क्या !!

कैवलरी !!
काले-काले घोड़ों पर खाकी मिलिट्री ड्रेस,
चेहरे का आधा भाग सिन्दूरी-गेरुआ
आधा भाग कोलतारी भैरव,
आबदार !!
कन्धे से कमर तक कारतूसी बेल्ट है तिरछा।
कमर में, चमड़े के कवर में पिस्तौल,
रोष भरी एकाग्र दृष्टि में धार है,
कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मॉर्शल
कई और सेनापति सेनाध्यक्ष
चेहरे वे मेरे जाने बूझे-से लगते,
उनके चित्र समाचारपत्रों में छपे थे,
उनके लेख देखे थे,
यहाँ तक कि कविताएँ पढ़ी थीं
भई वाह !
उनमें कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक जगमगाते कवि गण
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान्
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमा जी उस्ताद
बनता है बलबन
हाय, हाय !!
यहाँ ये दीखते हैं भूत पिशाच-काय।
भीतर का राक्षसी स्वार्थ अब
साफ उभर आया है,
छिपे हुए उद्देश्य
यहाँ निखर आये हैं,
यह शोभा यात्रा है किसी मृत-दल की।

विचारों की फिरकी सिर में घूमती है

इतने में प्रोसेशन में से कुछ मेरी ओर
आँखें उठीं मेरी ओर भर,
हृदय में मानो कि संगीन नोकें ही घुस पड़ीं बर्बर,
सड़क पर उठ खड़ा हो गया कोई शोर—

60 . कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

डालों में लटके जो मटमैले चिथड़े
किसी एक अति दीन
पागल के धन वे।
हाँ, वहाँ रहता है सिर-फिरा एक जन।

किन्तु, आज इस रात बात अजीब है।
वही, जो सिर-फिरा पागल क़तई था
आज एकाएक वह
जागरित बुद्धि है, प्रज्वलत् धी है।
छोड़ सिर-फिरा-पन,
बहुत ऊँचे गले से,
गा रहा कोई पद, कोई गान
आत्मोद्बोधमय!!
खूब भई, खूब भई,
जानता क्या वह भी कि
सैनिक प्रशासन है नगर में वाक़ई!
क्या उसकी बुद्धि भी जग गयी?

(करुण रसाल वे हृदय के स्वर हैं
गद्यानुवाद यहाँ उनका दिया जा रहा)

"ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!!

उदरम्भरि बन अनात्म बन गये,
भूतों की शादी में कनात-से तन गये
किसी व्यभिचारी के बन गये बिस्तर,

दुखों के दागों को तमग़ों-सा पहना,
अपने ही ख़यालों में दिन-रात रहना,
असंग बुद्धि व अकेले में सहना,
ज़िन्दगी निष्क्रिय बन गई तलघर,

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया !!

बताओ तो किस किसके लिये तुम दौड़ गये,
करुणा के दृश्यों से हाय ! मुँह मोड़ गये,
बन गये पत्थर,

बहुत-बहुत ज्यादा लिया,
दिया बहुत-बहुत कम,
मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम !!

लो हित पिता को घर से निकाल दिया,
जन मन-करुणा सी माँ को हकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियार कुत्तो को पाल लिया,
भावना के कर्तव्य—त्याग दिये,
हृदय के मन्तव्य—मार डाले !
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,
तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,
जम गये, जाम हुए, फँस गये,
अपने ही कीचड़ में धँस गये !!
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गये।

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया,
ज्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम ..."

मेरा सिर गरम है,
इसीलिये भरम है।
सपनों में चलता है आलोचन,
विचारों के चित्रों की अवलि में चिन्तन।
निजत्व माफ है बेचैन,
क्या करूँ ? किससे कहूँ,

कहा जाऊ, दिल्ली या उज्जैन ?
वैदिक ऋषि शुन शेप के
शाप भ्रष्ट पिता अजीगर्त समान ही
व्यक्तित्व अपना ही, अपने से खोया हुआ
वही उसे अकस्मात मिलता था रात मे,
पागल था दिन मे
सिर-फिरा विक्षिप्त मस्तिष्क ।

हाय, हाय !
उसने भी यह क्या गा दिया,
यह उसने क्या नया ला दिया,
प्रत्यक्ष,
मैं खडा हो गया
किसी छाया मूर्ति-सा समक्ष स्वय के
होने लगी बहस और
लगने लगे परस्पर तमाचे ।
छि पागलपन है,
वृथा आलोचन है ।
गलियो म अन्धकार भयानक-
मानो मेरे कारण ही लग गया
मॉर्शल-लॉ वह,
मानो मेरी निष्क्रिय सज्ञा ने सकट बुलाया,
मानो मेरे कारण ही दुर्घट
हुई यह घटना ।
चक्र से चक्र लगा हुआ है
जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओ घटनाओ का
बाहरी दुनिया मे,
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया मे,
चलता है द्वन्द्व कि
फिक्र से फिक्र लगी हुई है ।
आज उस पागल ने मेरी चैन भुला दी,
मेरी नीद गवा दी ।

मैं इस बरगद के पास खडा हू ।

मेरा यह चेहरा।
घुलता है जाने किस अथाह गम्भीर, सावले जल मे,
झुके हुए गुमसुम टूटे हुए घरों के
तिमिर अतल से
घुलता है मन यह।
रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
कोई गुरु-गम्भीर महान् अस्तित्व
महकता है लगातार
मानो खडहर-प्रसारो मे उद्यान
गुलाब-चमेली के, रात्रि-तिमिर मे,
महकते हो, महकते ही रहते हो हर पल।
किन्तु वे उद्यान कहा हैं,
अधेरे मे पता नही चलता।
मात्र सुगन्ध है सब ओर
पर, उस महक-लहर मे
कोई छिपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता
छटपटा रही छटपटा रही है

[5]
एकाएक मुझे भान !!
पीछे से किसी अजनबी ने
कन्धे पर हाथ रखा।
चौंकता मैं भयानक
एकाएक थरथर रेंग गई सिर तक,
नहीं नहीं। ऊपर से गिरकर
कन्धे पर बैठ गया बरगद-पात तक,
क्या वह सकेत, क्या वह इशारा ?
क्या वह चिट्ठी है किसी की ?
कौन-सा इगित ?

भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़ !!
बन्दूक धाय-धाय
मकानो के ऊपर प्रकाश-सा छा रहा गेरुआ।

भागता मैं दम छोड,
घूम गया कई मोड
घूम गयी पृथ्वी, घूम गया आकाश,
और फिर, किसी एक मुदे हुए घर की
पत्थर-सीढ़ी दिख गई, उस पार
चुपचाप बैठ गया सिर पकड कर !!
दिमाग मे चक्कर,
चक्कर भवरें
भवरो के गोल-गोल केन्द्र मे दीखा
स्वप्न सरीखा—

भूमि की सतहो के बहुत-बहुत नीचे
अधियारी एकान्त
प्राकृत गुहा एक।
विस्तृत खोह के सावले तल मे
तिमिर को भेद कर चमकते हैं पत्थर
मणि तेजस्क्रिय रेडियो-ऐक्टिव रत्न भी बिखरे,
झरता है जिन पर प्रबल प्रपात एक।
प्राकृत जल वह आवेग-भरा है,
द्युतिमान् मणियो की अग्नियो पर से
फिसल-फिसल कर बहती लहरें,
लहरो के तल मे से फूटती है किरने
रत्नो की रगीन रूपो की आभा
फूट निकलती
खोह की बेडौल भीतें है झिलमिल !!
पाता हूँ निज को खोह के भीतर,
विलुब्ध नेत्रो से देखता हूँ द्युतिया,
मणि तेजस्क्रिय हाथो मे लेकर
दीप्ति मे वलयित रत्न वे नही हैं
अनुभव, वेदना, विवेक-निष्कर्ष,
मेरे ही अपने यहा पडे हुए हैं
विचारो की रक्तिम अग्नि के मणि वे
प्राण-जल-प्रपात म घुलते है प्रतिपल
अकेले मे किरणो की गीली है हलचल

होती है हलचल !!

[6]
हाय, हाय ! मैंने उन्हें गुहा-वास दे दिया
लोक-हित क्षेत्र से कर दिया वंचित
जनोपयोग से वर्जित किया और
निषिद्ध कर दिया
खोह में डाल दिया !!
वे खतरनाक थे,
(बच्चे भीख मागते) खैर ··
यह न समय है,
जूझना ही तै है।
सीन बदलता है,
सुनसान चौराहा साँवला फैला,
बीच में वीरान गेरुआ घण्टाघर,
ऊपर कत्थई बुजुर्ग गुम्बद,
साँवली हवाओं में काल टहलता है।
रात में पीले हैं चार घड़ी-चेहरे,
मिनिट के काँटों की चार अलग गतियाँ,
चार अलग कोण,
कि चार अलग संकेत
(मनस् में गतिमान चार अलग मतियाँ)
खम्भों पर बिजली की गरदनें लटकीं,
शर्म से जलते हुए बल्बों के आस-पास
बेचैन ख़यालों के पंखों के कीड़े
उड़ते हैं गोल-गोल
मचल-मचल कर।
घण्टाघर तले ही
पंखों के टुकड़े बीट व तिनके।
गुम्बद-विवर में बैठे हुए बूढ़े
असंख्य पक्षी
बहुत तेज़ नज़र से देखते हैं सब ओर,
मानो कि इरादे
भयानक चमके।

सुनसान चौराहा,
बिखरी हैं गतियां, बिखरी है रफ्तार,
गश्त में घूमती है कोई दुष्ट इच्छा।
भयानक सिपाही जाने किस थकी हुई झोंक में
अंधेरे में सुलगाता सिगरेट अचानक
तांबे-से चेहरे की ऐंठ झलकती।
पथरीली सलवट
दियासलाई की पल-भर लौ में
सांप-सी लगती।
पर, उसके चेहरे का रंग बदलता है हर बार,
मानो अनपेक्षित कहीं न कुछ हो
वह ताक रहा है—
संगीन नोकों पर टिका हुआ
सांवला बन्दूक-जत्था
गोल त्रिकोण एक बनाये खड़ा जो
चौक के बीच में।।
एक ओर
टैंकों का दस्ता भी खड़े-खड़े ऊंघता
परन्तु अड़ा है।।

भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़।
भागती है चप्पल, चटपट आवाज़
चांटों सी पड़ती।
पैरों के नीचे की कीच उछलकर
चेहरे पर, छाती पर पड़ता है सहसा,
ग्लानि की मितली।
गलियों का गोल-गोल खोह-अन्धेरा
चेहरे पर आंखों पर करता है हमला।
अजीब उमस-बास
गलियों का रुंधा हुआ उच्छ्वास
भागता हूं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़।

धुंधले से आकार कहीं-कहीं दीखते,
भय के ? या घर के ? कह नहीं सकता
आता है अकस्मात् कोलतार रास्ता
लम्बा व चौडा व स्याह व ठण्डा,
बेचैन आँखें ये देखती हैं सब ओर।
कहीं कोई नहीं है,
नहीं कहीं कोई भी।
श्याम आकाश मे, संकेत भाषा सी तारा की आँखें
चमचमा रही हैं।
मेरा दिल ढिबरी सा टिमटिमा रहा है।
कोई मुझे खीचता है रास्ते के बीच ही।
जादू से बंधा हुआ चल पडा उस ओर।
सपाट सूने म ऊँची सी खडी जो
तिलक की पाषाण मूर्ति हैं नि सग
स्तब्ध जडीभूत
देखता हूँ उसको परन्तु ज्यो ही मैं पास पहुँचता
पाषाण-पीठिका हिलती सी लगती
अरे, अरे, यह क्या !!
कण-कण काँप रहे जिनमे से झरते
नीले इलेक्ट्रान
सब ओर गिर रही चिनगियाँ नीली
मूर्ति के तन से झरते हैं अगार।
मुस्कान पत्थरी होठो पर काँपी,
आँखो म बिजली के फूल सुलगते।

इतने मे यह क्या !!
भव्य ललाट की नासिका मे से
बह रहा खून न जाने कब से
लाल-लाल गरमीला रक्त टपकता
(खून के धब्बा से भरा अगरखा)
मानो कि अतिशय चिन्ता के कारण
मस्तक कोष ही फूट पडे सहसा
मस्तक रक्त ही बह उठा नासिका म से।
हाय, हाय, पितः पितः ओ,

चिन्ता में इतने न उलझो
हम अभी जिन्दा हैं जिन्दा,
चिन्ता क्या है !!
मैं उस पाषाण मूर्ति के ठण्डे
पैरों को छाती से बरबस चिपका
रुआंसा-सा होता
देह में तन गए करुणा के काटे
छाती पर, सिर पर, बाहों पर मेरे
गिरती हैं नीली
बिजली की चिनगियां
रक्त टपकता है हृदय में मेरे
आत्मा में बहता-सा लगता
खून का तालाब।
इतने में छाती में भीतर ठक्-ठक्
सिर में है धड़-धड़ !! कट रही हड्डी !!
फिक्र जबरदस्त !!
विवेक चलाता तीखा-सा रन्दा
चल रहा बसूला
छीले जा रहा मेरा यह निजत्व ही कोई
भयानक जिद कोई जाग उठी मेरे भी अन्दर
हठ कोई बड़ा भारी उठ खड़ा हुआ है।
इतने में आसमान कांपा व धांय-धांय
बन्दूक धड़ाका
बिजली की रफ्तार पैरों में घूम गयी।
खोहों-सी गलियों के अंधेरे में एक ओर
मैं थक बैठ गया,
सोचने विचारने।
अंधेरे में डूबे मकानों के छप्परों पार से
रोने की पतली-सी आवाज़
सूने में कांप रही कांप रही दूर तक
कराहों की लहरों में पाशव प्राकृत
वेदना भयानक थरथरा रही है।
मैं उसे सुनने का करता हूं यत्न
कि देखता क्या हूं—

सामने मेरे
सर्दी में बोरे को ओढ़ कर
कोई एक अपने
हाथ-पैर समेटे
काँप रहा, हिल रहा—वह मर जायगा।
इतने में वह सिर खोलता है सहसा
बाल बिखरते,
दीखते हैं कान कि
फिर वह खोलता है, वह कुछ
बुदबुदा रहा है,
किन्तु, मैं सुनता ही नहीं हूँ।
ध्यान से देखता हूँ—वह कोई परिचित
जिसे खूब देखा था, निरखा था कई बार
पर, पाया नहीं था।
अरे हाँ, वह तो...
विचार उठते ही दब गये,
सोचने का साहस सब चला गया है।
वह मुख—अरे, वह मुख, वे गांधी जी !!
इस तरह पंगु !!
आश्चर्य !!
नहीं, नहीं वे जाँच-पड़ताल
रूप बदलकर करते हैं चुपचाप।
सुराग़रसी सी कुछ।

अँधेरे की स्याही में डूबे हुए देव को सम्मुख पाकर
मैं अति दीन हो जाता हूँ पास कि
बिजली का झटका
कहता है—"भाग जा, हट जा
हम हैं गुज़र गये ज़माने के चेहरे
आगे तू बढ़ जा।"
किंतु, मैं देखा किया उस मुख को।
गम्भीर दृढ़ता की सलवटें वैसी ही,
श्रद्धा में गुरुता।

वे कह रहे हैं—
"दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दानों को चुगने चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुरगा
यदि बांग दे उठे ज़ोरदार
बन जाये मसीहा"
वे कह रहे हैं—
मिट्टी के लोंदे में किरगीले कण-कण
गुण हैं,
जनता के गुणों से ही सम्भव
भावी का उद्भव···
गम्भीर शब्द वे और आगे बढ़ गये,
जाने क्या कह गये !!
मैं अति उद्विग्न !

एकाएक उठ पड़ा आत्मा का पिंजर
मूर्ति की ठठरी।
नाक पर चश्मा, हाथ में डण्डा,
कन्धे पर बोरा, बांह में बच्चा।
आश्चर्य !! अद्भुत ! यह शिशु कैसे !!
मुसकरा उस द्युति-पुरुष ने कहा तब—
"मेरे पास चुपचाप सोया हुआ यह था।
सभालना इसको, सुरक्षित रखना"

मैं कुछ कहने को होता हूं इतने में वहां पर
कहीं कोई नहीं है, कहीं कोई नहीं है।
और ज्यादा गहरा और ज्यादा अकेला
अंधेरे का फैलाव !
बालक लिपटा है मेरे इस गले से चुपचाप,
छाती से कन्धे से चिपका है नन्हा-सा आकाश
स्पर्श है सुकुमार प्यार-भरा कोमल
किन्तु है भार का गम्भीर अनुभव।
भावी की गंध और दूरियां अंधेरी
आकाशी तारों के साथ लिये हुए मैं

चला जा रहा हू
घुसता ही जाता हूँ फासलो की खोहो की तहो मे।

सहसा रो उठा कन्धे पर वह शिशु
अरे, अरे, वह स्वर अतिशय परिचित !!
पहले भी कई बार कही तो भी सुना था,
उसमे तो स्फोटक क्षोभ का आवेग,
गहरी है शिकायत
क्रोध भयकर।
मुझे डर यदि कोई वह स्वर सुन ले
हम दोनो फिर कही नही रह सकेंगे
मैं पुचकारता हूँ, बहुत दुलारता,
समझाने के लिए तब गाता हूँ गाने,
अधभूली लोरी ही होठो से फूटती !
मैं चुप करने की जितनी भी करता हूँ कोशिश,
और-और चीखता है क्रोध से लगातार !!
गरम-गरम अश्रु टपकते हैं मुझ पर।

किन्तु, न जाने क्यो खुश बहुत हूँ।
जिसको न मैं इस जीवन मे कर पाया,
वह कर रहा है।
मैं शिशु-पीठ को थपथपा रहा हू,
आत्मा है गीली।
पैर आगे बढ रहे, मन आगे जा रहा।

डूबता हूँ मैं किसी भीतरी सोच मे—
हृदय के थाले म रक्त का तालाब,
रक्त म डूबी हैं द्युतिमान मणिया,
रुधिर से फूट रही लाल-लाल किरणें,
अनुभव-रक्त मे डूबे हैं सकल्प,
और ये सकल्प
चलते हैं साथ-साथ।
अधियारी गलियो मे चला जा रहा हूँ।

इतने में पाता हूँ अँधेरे में सहसा
कन्धे पर कुछ नहीं !!
वह शिशु
चला गया जाने कहाँ,
और अब उसके ही स्थान पर
मात्र हैं सूरज-मुखी-फूल-गुच्छे।
उन स्वर्ण-पुष्पों से प्रकाश-विकीरण
कन्धों पर, सिर पर, गालों पर, तन पर
रास्ते पर, फैले हैं किरणों के कण-कण।
भई वाह, यह ख़ूब !!

इतने में गली एक आ गयी और मैं
दरवाजा खुला हुआ देखता।
ज़ीना है अँधेरा।
कहीं कोई ढिबरी-सी टिमटिमा रही है।
मैं बढ़ रहा
कन्धों पर फूलों के लम्बे वे गुच्छे
क्या हुए, कहाँ गये ?
कन्धे क्यों वज़न से दुख रहे सहसा।
ओ हो,
बन्दूक आ गयी
वाह वा ··!!
वज़नदार रॉयफ़ल
भई ख़ूब !!
खुला हुआ कमरा है साँवली हवा है,
झाँकते हैं खिड़कियों में से दूर अँधेरे में टँके हुए सितारे
फैली है बर्फ़ीली साँस-सी वीरान,
तितर-बितर सब फैला है सामान।
बीच में कोई ज़मीन पर पसरा,
फैलाये बाँहें, ढह पड़ा आख़िर।
मैं उस जन पर फैलाता टार्च कि यह क्या—
ख़ून-भरे बाल में उलझा है चेहरा,
भौंहों के बीच में गोली का सूराख़,
ख़ून का परदा गालों पर फैला,

होठो पर सूखी है बत्यई धारा,
फूटा है चश्मा नाक है सीधी,
ओफ्फो !! एकात प्रिय यह मेरा
परिचित व्यक्ति है, वही, हा,
सचाई थी सिर्फ एक अहसास
वह कलाकार था
गलियो के अधेरे का, हृदय मे, भार था
पर, कार्य क्षमता से वचित व्यक्ति,
चलाता था अपना असग अस्तित्व।
सुकुमार मानवीय हृदयो के अपने
शुचितर विश्व के मात्र थे सपने।
स्वप्न व ज्ञान व जीवनानुभव जो—
हलचल करता था रह-रह दिल मे
किसी को भी दे नही पाया था वह तो।
शून्य के जल मे डूब गया नीरव
हो नही पाया उपयोग उसका।
किन्तु, अचानक लोक मे आ कर क्या कर गुजरा कि
सन्देहास्पद समझा गया और
मारा गया वह वधिको के हाथो।
मुक्ति का इच्छुक तृषार्त अन्तर
मुक्ति के यत्नो के साथ निरन्तर
सब का था प्यारा।
अपने मे द्युतिमान्।
उनका यो वध हुआ,
मर गया एक युग,
मर गया एक जीवनादर्श !!
इतने मे मुझको ही चिढाता है कोई।
सवाल है – मैं क्या करता था अब तक,
भागता फिरता था सब ओर।
(फिजूल है इस वक्त कोसना खुद को)
एकदम जरूरी – दोस्तो को खोजू
पाऊ मैं नए-नए सहचर
सकर्मक सत् चित्-वेदना भास्कर !!

जीने से उतरा,
एकाएक विद्रूप रूपों से घिर गया सहसा
पकड मशीन सी,
भयानक आकार घेरते हैं मुझको,
मैं आततायी-सत्ता के सम्मुख।

एकाएक हृदय धड़क कर रुक गया, क्या हुआ !!
भयानक सनसनी।
पकड़कर कॉलर गला दबाया गया।
चांटे से कनपटी टूटी कि अचानक
त्वचा उखड गयी गाल की पूरी।
कान मे भर गई
भयानक अनहद-नाद की भनभन
आखो मे तैरी
रक्तिम तितलिया, चिनगिया नीली।
सामने उगते-डूबते धुंधले
कुहरिल वर्तुल,
जिनका कि चक्रिल केन्द्र ही फैलता आता
उस फैलाव मे दीखते मुझको—
धस रहे, गिर रहे बडे-बडे टॉवर
घुघराला धूँआ गेरुआ ज्वाला।
हृदय म भगदड—
सम्मुख दीखा
उजाड बजर टीले पर सहसा
रो उठा कोई, रो रहा कोई
भागता कोई सहायता देने।
अन्तर्तत्वो का पुनर्प्रबन्ध और पुनर्व्यवस्था
पुनर्गठन-सा होता जा रहा।

दृश्य ही बदला, चित्र बदल गया
जबरन् ले जाया गया मैं गहरे
अधियारे कमरे के स्याह सिफर मे।
टूटे से स्टूल म बिठाया गया हूँ।
शीश की हड्डी जा रही तोडी।

लोहे की कील पर पड़े हथौड़े
पड़ रहे लगातार।
शीश का मोटा अस्थि-कवच ही निकाल डाला।
देखा जा रहा —
मस्तक यन्त्र में कौन विचारों की कौन-सी ऊर्जा,
कौन सी शिरा में कौन-सी धक्-धक्,
कौन सी रग में कौन सी फुरफुरी,
कहाँ है पश्यत् कैमरा जिसमें
तथ्यों के जीवन-दृश्य उतरते,
कहाँ-कहाँ सच्चे सपनों के आशय
कहाँ कहाँ क्षोभक-स्फोटक सामान !
भीतर कहीं पर गड़े हुए गहरे
तलघर अन्दर
छिपे हुए प्रिंटिंग प्रेस को खोजो।
जहाँ कि चुपचाप खयालों के परचे
छपते रहते हैं, बाँटे जाते।
इस संस्था के सेक्रेट्री को खोज निकालो,
शायद, उसका ही नाम हो आत्मा,
कहाँ है सरगना इस टुकड़ी का
कहाँ है आत्मा ?
(और, मैं सुनता हूँ चिढ़ी हुई ऊँची
खिझलायी आवाज)
स्क्रीनिंग करो मिस्टर गुप्ता,
क्रॉस एक्जामिन हिम थॉरोली !!

चाबुक-चमकार
पीठ पर यद्यपि
उखड़े चर्म की कत्थई-रक्तिम रेखाएँ उभरीं
पर, यह आत्मा कुशल बहुत है,
देह में रेंग रही संवेदना की गरमीली कड़ुई धारा का गहरी
झनझन थरथर तारों को उसके,
समेट कर वह सब
वेदना विस्तार करके इकट्ठा
मेरा मन यह

जबरन् उनकी छोटी सी कड़ी
गठान बाँधता सख्त व मजबूत
मानो कि पत्थर।
जोर लगा कर,
उसी गठान को हथेलियों से
करता है चूर-चूर,
धूल में बिखरा देता है उसको।
मन यह हटता है देह की हद से
जाता है कहीं पर अलग जगत् में।
विचित्र क्षण है,
सिर्फ है जादू,
मात्र मैं बिजली
यद्यपि खोह में खूटे बधा हूँ,
दैत्य है आस-पास
फिर भी बहुत दूर मीलों के पार वहाँ
गिरता हूँ चुपचाप पत्र के रूप में
किसी एक जेब में
वह जेब
किसी एक फटे हुए मन की।

समस्वर, समताल,
सहानुभूति की सनसनी कोमल !!
हम कहाँ नहीं हैं
सभी जगह हम।
निजता हमारी ?
भीतर-भीतर बिजली के जीवित
तारों के जाले,
ज्वलन्त तारों की भीषण गुत्थी,
बाहर बाहर धूल सी भूरी
जमीन की पपड़ी
अग्नि को लेकर मस्तक हिमवत्,
उग्र प्रभंजन लेकर, उर यह
बिलकुल निश्चल।
भीषण शक्ति को धारण करके

आत्मा का पोशाक दीन व मैला।
विचित्र रूपों को धारण कर के
चलता है जीवन, लक्ष्यों के पथ पर।

[7]
रिहा !!
छोड़ दिया गया मैं,
कई छाया-मुख अब करते हैं पीछा,
छाया कृतियाँ न छोड़ती हैं मुझको,
जहाँ-जहाँ गया वहाँ
भौंहों के नीचे के रहस्यमय छेद
मारते हैं संगीत —

दृष्टि की पत्थरी चमक है पैनी।
मुझे अब खोजने होंगे साथी —
काले गुलाब व स्याह सिवन्ती,
श्याम चमेली,
सँवलाये कमल जो खोहों के जल में
भूमि के भीतर पाताल-तल में
खिले हुए कब से भेजते हैं संकेत
सुझाव-सन्देश भेजते रहते !!
इतने में सहसा दूर क्षितिज पर
दीखते हैं मुझको
बिजली की नंगी लताओं से भर रहे
सफ़ेद नीले मोतिया चम्पई फूल गुलाबी
उठते हैं वहीं पर हाथ अकस्मात्
अग्नि के फूलों को समेटने लगते।
मैं उन्हें देखने लगता हूँ एकटक,
अचानक विचित्र स्फूर्ति से मैं भी
ज़मीन पर पड़े हुए चमकीले पत्थर
लगातार चुनकर
बिजली के फूल बनाने की कोशिश
करता हूँ। रश्मि-विकीरण—
मेरे भी प्रस्तर करते हैं प्रतिक्षण।

रेडियो-ऐक्टिव रत्न हैं वे भी।
बिजली के फूलों की भांति ही
यत्न हैं वे भी,
किन्तु, असन्तोष मुझको है गहरा,
शब्दाभिव्यक्ति-अभाव का संकेत।
काव्य-चमत्कार उतना ही रंगीन
परन्तु, ठंडा।
मेरे भी फूल हैं तेजस्क्रिय, पर
अतिशय शीतल।
मुझको तो बेचैन बिजली की नीली
ज्वलन्त बांहों में बांहों का उलझा
करती है उतनी ही प्रदीप्त लीला
आकाश-भर में साथ-साथ उसके घूमना है मुझको
मेरे पास न रंग है बिजली का गौर कि
भीमाकार हूँ मेघ मैं काला
परन्तु, मुझको है गम्भीर आवेश
अथाह प्रेरणा-स्रोत का संयम।
अरे, इन रंगीन पत्थर-फूलों से मेरा
काम नहीं चलेगा!!
क्या कहूँ,
मस्तक-कुण्ड में जलती
सत्-चित्-वेदना-सचाई व गलती—
मस्तक-शिराओं में तनाव दिन-रात।

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी बाँहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक
ले जाने उसको धँसना ही होगा
झील के हिम शीत सुनील जल में
चाँद उग आया है

गलियों की आकाशी लम्बी-सी चीर में
तिरछी है किरनों की मार
उस नीम पर
जिसके कि नीचे
मिट्टी के गोल चबूतरे पर, नीली
चांदनी में कोई दिया सुनहला
जलता है मानो कि स्वप्न ही साक्षात्
अदृश्य साकार।
मकानों के बड़े-बड़े खँडहर जिनके कि सूने
मटियाले भागों में खिलती ही रहती
महकती रातरानी फूल-भरी जवानी में लज्जित
तारों की टपकती अच्छी न लगती।

भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़,
ध्वस्त दीवालों के उस पार कहीं पर
बहस गरम है
दिमाग में जान है, दिलों में दम है
सत्य से सत्ता के युद्ध को रंग है,
पर, कमज़ोरियाँ सब मेरे संग हैं,
पाता हूँ सहसा —
अँधेरे की सुरंग गलियों में चुपचाप
चलते हैं लोग-बाग
दृढ़-पद गम्भीर,
बालक युवागण
मन्द गति नीरव
किसी निज भीतरी बात में व्यस्त हैं,
कोई आग जल रही तो भी अन्तःस्थ।

विचित्र अनुभव !!
जितना मैं लोगों की पाँतों को पार कर
बढ़ता हूँ आगे,
उतना ही पीछे मैं रहता हूँ अकेला,
पश्चात्-पद हूँ।

पर, एक रेला और
पीछे से चला और
अब मेरे साथ है।
आश्चर्य !! अद्भुत !!
लोगो की मुट्ठियाँ बँधी हैं।
अँगुली-सन्धि से फूट रही किरनें
लाल-लाल
यह क्या !!
मेरे ही विक्षोभ मणियो को लिए वे,
मेरे ही विवेक रत्नो को ले कर,
बढ रहे लोग अँधेरे मे सोत्साह।
किन्तु मैं अकेला
बौद्धिक जुगाली म अपने से दुकेला।

गलियो के अँधेरे मे मैं भाग रहा हू,
इतने म चुपचाप कोई एक
दे जाता पर्चा,
कोई गुप्त शक्ति
हृदय म करने-सी लगती है चर्चा !!
मैं बहुत ध्यान से पढता हू उसको !
आश्चर्य !
उसमे तो मेरे ही गुप्त विचार व
दबी हुई सवेदनाएँ व अनुभव
पीडाएँ जगमगा रही हैं।
यह सब क्या है !!
आसमान झाँकता है लकीरो के बीच-बीच
वाक्यो की पाँतो मे आकाशगगा सी फैली
शब्दो के व्यूहो मे ताराएँ चमकी
तारक-दलो म भी खिलता है आँगन
जिसमे कि चम्पा के फूल चमकते
शब्दकोशो के कानो म गहरे तुलसी के श्यामल खिलते हैं
चेहरे !!
चमकता है आशय मनोज्ञ मुखो से
पारिजात पुष्प महकते।

हवाओं में अदृश्य ज्वाला की गरमी
गरमी का आवेग।
साथ-साथ घूमते हैं, साथ-साथ रहते हैं,
साथ-साथ सोते हैं, खाते हैं, पीते हैं,
जन-मन उद्देश्य !!
पथरीले चेहरों में खानी ये कसे ढूँसा
घूमते हैं यन्त्रवत्,
ये पहचान-से लगते हैं वाकई
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी !!

सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्
चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं
उनके खयाल से यह सब गप है
मात्र किंवदन्ती।
रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल-बद्ध ये सब लोग
नपुंसक भोग-शिरा-जालों में उलझे।
प्रश्न की उथली-सी पहचान
राह से अनजान
वाक् रुदन्ती।
चढ़ गया उर पर कहीं कोई निर्दयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

भव्याकार भवनों के विवरों में छिप गये
समाचारपत्रों के पतियों के मुख स्थूल।
गढ़े जाते संवाद,
गढ़ी जाती समीक्षा,
गढ़ी जाती टिप्पणी जन मन-उर-शूर।
बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराये के विचारों का उद्भास।
बड़े-बड़े चेहरों पर स्याहियाँ पुत गयीं।
नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर में छिप गयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

किसी एक बलवान् तम-श्याम लुहार ने बनाया
कण्डों का वर्तुल ज्वलन्त मण्डल।
स्वर्णिम कमलों की पाखुरी-जैसी ही
ज्वालाएँ उठती हैं उससे,
और उस गोल-गोल ज्वलन्त रेखा में रक्खा
लोहे का चक्का
चिनगियाँ स्वर्णिम नीली व लाल-लाल
फूलों-सी खिलतीं। कुछ बलवान् जन साँवले मुख के
चढ़ा रहे लकड़ी के चक्के पर जबरन
लाल-लाल लोहे की गोल गोल पट्टी
घन मार घन मार
उसी प्रकार अब
आत्मा के चक्के पर चढ़ाया जा रहा
संकल्प शक्ति के लोहे का मजबूत
ज्वलन्त टायर!!
अब युग बदला है वाकई,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

गेरुआ मौसम उड़ते हैं अंगार
जंगल जल रहे ज़िन्दगी के अथ
जिनके कि ज्वलन्त प्रकाशित भीषण
फूलों से बहती वेदना नदियाँ
जिनके कि जल में
सचेत हो कर सैंकड़ों सदियाँ ज्वलन्त अपने
बिम्ब फेंकतीं!!
वेदना नदियाँ
जिनमें कि डूबे हैं युगानुयुग से
मानो कि आँसू
पिताओं की चिन्ता का उद्विग्न रंग भी,
विवेक-पीड़ा की गहराई बेचैन,
डूबा है जिसमें श्रमिक का सन्ताप।
वह जल पी कर
मेरे युवकों में होता जाता व्यक्तित्वान्तर,
विभिन्न क्षेत्रों में कई तरह से करते हैं संगर,

प्रत्येक वस्तु का निज-निज आलोक,
मानो कि अलग-अलग फूलो के रगीन
अलग-अलग वातावरण है बेमाप,
प्रत्येक अर्थ की छाया म अन्य अर्थ
झलकता साफ साफ !
डेस्क पर रखे हुए महान् ग्रन्थो के लेखक
मेरी इन मानसिक क्रियाओ के बन गये प्रेक्षक,
मेरे इस कमरे म आकाश उतरा,
मन यह अन्तरिक्ष-वायु मे सिहरा।

उठता हूँ, जाता हूँ, गैलरी म खडा हूँ।
एकाएक वह व्यक्ति
आखो के सामने
गलियो मे सडको पर, लोगो की भीड मे
चला जा रहा है।
वही जन जिसे मैंने देखा था गुहा म।
धडकता है दिल
पुकारने को खुलता है मुह
कि अकस्मात्—
वह दिखा, वह दिखा
वह फिर खो गया कि किसी जन यूथ मे
उठी बाह यह उठी हुई रह गयी ??

अनखोजी निज समृद्धि का वह परम-उत्कर्ष
परम अभिव्यक्ति
मै उसका शिष्य हू
वह मेरी गुरु है,
गुरु है ! !
वह मेरे पास कभी बैठा ही नही था,
वह मेरे पास कभी आया ही नही था,
तिलिस्मी खोह म देखा था एक बार,
आखिरी बार ही।
पर, वह जगत् की गलिया म घूमता है प्रतिपल
वह फटेहाल रूप।

[ये जो जन हैं, साधारण जन हैं
उन में से एक-एक के अन्दर
मूर्छित प्रमथ्यु कहीं बंदी है !
अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का
कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीड़ा-सिक्त स्वर
उस के मन को बेध मूर्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे।]

92. कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

अंधी घाटी में भयभीत भेड़ के समान
पृथ्वी यह
अंधियारे में थी सहमी खड़ी

मैंने, हां मैंने ही प्रथम बार साहस किया

द्युपितर

साहस नहीं था,
मैंने जो नक्शा बनाया था
मानव अस्तित्व का—
उसमें थी दासता,
विनय थी, कायरता थी
भय था, आतंक था
अंधेरा था
यह जो
इस व्यक्ति ने
अंधेरे को देकर चुनौती
दुस्साहस किया
यह मेरी सत्ता का प्रथम अनादर था

मैंने इसे दण्ड दिया
वर्जित थी ज्योति
और गर्हित था स्वातन्त्र्य
साहस उत्पन्न ही नहीं था किया मैंने तब
इसकी यह लायी हुई आग
अगर साहस बन कर फैल गयी होती मनुष्यों में
फिर वे उठाते सिर
फिर फिर वे उठाते सिर

जन-साधारण

मूरख नहीं हैं जी !
हम क्यों उठाते सिर
हम क्यों ये सब साहस करते व्यर्थ
अग्नि जिसे लाना था ले आया !

विलासी थे, कायर थे
जिनके महलो मे मैं वन्दी थी

मुक्त किया मुझको प्रमथ्यु ने

उसने कहा
तुम हो ज्योति
तुम्ही जीवन हो

माथे से लगाकर प्रमथ्यु ने
फेंक दिया फिर मुझको इन कायरो के बीच

मुझ से ये
सुबह-शाम चूल्हा सुलगायेंगे
शय्या गरमायेंगे
सोना गलायेंगे
और ज़रा-सा मौका पाते ही
अपने पडोसी का सारा घर फूकेंगे !
मुझको क्यो मुक्त किया
मुझको क्यो माथे से लगाकर
फिर फेंक दिया इन कायरो के बीच !

प्रमथ्यु

मुझको मालूम नही था कुछ भी
डूबा था सब कुछ अँधियारे में
अँधियारे मे मैं भी डूबा था

अग्नि किसे कहते हैं
इसका आभास भी नही था मुझे
गिद्ध यह बैठा है जो मेरे कन्धो पर
ऊपर उडते-उडते पहली बार इसने देखी थी झलक अग्नि की !

साहस था मेरा
किन्तु द्युपितर के महलो की गुप्त राह

ऊँचे पर्वत, ऊबड़-खाबड़ घाटी वाली
धरती पर कैसे उतरता मैं ?
नीचे अँधियारा था
अब मैं बूढ़ा हूँ
और मेरे थके है पख
कब तक आकाश मे विहार करूँ
सिवा तुम्हारे इन सबल पुष्ट कन्धो के और कहाँ बैठू मै ?

कटु मत हो !
आहत है मेरा अहम्
मेरे थे पख और मैंने देखी थी अग्नि
मैं भी ला सकता था
किन्तु एक थोड़े-से साहस के बगैर
मैं अग्नि जीत लाने मे वचित रहा

तुम हो मेरे प्रियजन
मेरा यह आहत अहम्
अगर तुम्हारे मासपिण्ड से बुझाता है
अपनी भूख
तो तुम क्या इतना भी नही सहोगे मेरे लिए

सुनो वत्स !
मुझको यदि मानते हो गुरुजन
तो बात सुनो
सहते चलो सब कुछ
माथे पर शिकन नही लाना कभी
मन मे घृणा नही लाना कभी
घृणा वह ज़हर है
जो नसो मे प्रवाहित
रक्त को दूषित करता है
और वह रक्त
वह तुम्हारा रक्त
अन्ततोगत्वा मुझको ही तो पीना है !

[युद्ध होगा युद्ध होगा अगर मैं बोलूँगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर कायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ रूठ
मत ऊब सिर्फ़ टूट]

कल से ज्यादा लोग पास मँडराते हैं
जरूरत से ज्यादा आसपास जरूरत से ज्यादा नीरोग
तब से कि व्यर्थ है जो मैं कर रहा हूँ
क्योंकि जो कह रहा हूँ उसमे अर्थ है।

कल मैंने उसे देखा लाख चेहरों म एक वह चेहरा
कुढ़ता हुआ और उलझा हुआ वह उदास कितना बोदा
वही था नाटक का मुख्यपात्र
पर उसकी ठस पीठ पर मैं हाथ रख न सका
वह बहुत चिकनी थी।

लौट आओ फिर उसी खाते-पीते स्वर्ग म
पिटे हुए नेता, पिटे अनुचर बुलाते हैं
मार फड़फड़ाते हैं पंख साल दो साल गले बँधी घंटियाँ
पढ़ी-लिखी गरदनें बजाती हैं फिर उड़ जाता है विचार
हम रह जाते हैं अधेड़
कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूँगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक कायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ
मत डूब सिर्फ टूट जैसे कि परसो के बाद
वह आया बैठ गया आदतन एक बहस छेड़कर
गया एकाएक बाहर औरो से एक नकली दरवाजा
भेड़ कर
दर्द दर्द मैंने कहा क्या अब नहीं होगा
हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द
गरजा मुस्टंडा विचारक—समय आ गया है
कि रामलाल कुचला हुआ पाँव जो घसीट कर
चलता है अर्थहीन हो जाये।

छुओ
मेरे बच्चे का मुँह
गाल नहीं जैसा विज्ञापन मे छपा
ओठ नहीं

६
कुछ पता चला जान का शोर डर कोई लगा
नहीं—बोला मेरा भाई मुझे पाँव तले
रौंदकर, अंग्रेजी।

कितना आसान है पागल हो जाना
और भी जब इस पर इनाम मिलता है
नकली दरवाजे पीटते हैं जवान हाथों को
काम सर को आराम मिलता है : दूर
राजधानी से कोई कस्बा दोपहर बाद छटपटाता है
एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनों, बाप मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन
दोनों पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूड़ियाँ
नेहरू युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन

अस्पताल मे मरीज छोड़कर आ नहीं सकता तीमारदार
दूसरे दिन कौन बतायेगा कि वह कहाँ गया
निष्कासित होते हुए मैंने उसे देखा था
जयपुर-अधिवेशन जब समेटा जा रहा था
जो मजूर लगे हुए थे कुर्सी ढोने मे
उन्होंने देखा एक कोने मे बैठा है
अजय अपमानित
वह उसे छोड गये
कुर्सी को
सन्नाटा छा गया

कितना आसान है नाम लिखा लेना
मरते मनुष्य के बारे मे क्या करूँ क्या मरते मनुष्य का
अन्तरग परिषद से पूछ कर तय करना है कितना
आसान है कितनी दिलचस्प है नेहरू की
आशंसा पाटिल की भर्त्सना की कथा
कितनी घुटन के अन्दर घुटन के
अन्दर घुटन से कितनी सहज मुक्ति

कितना आसान है रख लेना अपने पास अपना वोट
क्योंकि प्रतिद्वन्द्वी आयोग्य है
अत्याचारी हत्या किये जाय जब तक कि स्वर्णधूलि
स्वर्णशिखर से आकर आत्मा के रचना खण्ड
किये जाय
गोल शब्दकोश में अमोल बोल तुतलाते
भीमकाय भाषाविद हाँफते डकारते हुँकाते
अंग्रेजी की अवध्य गाय
घटा घनघनाते पुजारी जयजयकार
सरकार से करार जारी हजार शब्द रोज
कैद

रोज रोज एक और दर्द एक क्रोध एक बोध
और नापैद
कल पैदा करना होगा भूखी पीढ़ी को
आज जो अनाज पेट भरता है
लो हम चले यह रक्खे हैं उर्वरक सम्बन्धी
कुछ विचार
मग्न से बोले विनोबा से जैनेन्द्र दिल्ली में बहुत बड़ी लपसी
पकायी गयी युद्ध से बदहवास
जनता के लिए लड़ो या न लड़ो
भारत पाकिस्तान अलग-अलग करो
फिर मरो क़त्ल कर
भूल जाओ
राजनीति

अध्यापक याद करो किसके आदमी हो तुम
याद करो विद्यार्थी तुम्हें आदमी से
एक दर्जा नीचे
किसका आदमी बनना है—दर्द ?
दर्द, खैराती अस्पताल में डाक्टर ने कहा वह मेरा काम नहीं
वह मुसद्दी का है
कहीं भेजता है मुझे लिखकर इसे अच्छा करो
जो तुम बीमार हो तो तुमने उसे खुश नहीं किया होगा

अब तुम बीमार हो तो उसे खुश करो
कुछ करो
उसने कहा लोहिया से लोहिया ने कहा
कुछ करो
खुश हुआ वह चला गया अस्पताल मे भीड
भौचक भीड धाँय धाँय
सौ हजार लाख दर्द आठ दस क्रोध
तीन हजार बद बाजार भय भगदड गर्द
लाल
छाँह, धूप छाँह, नहो घोडे बन्दूक
धुआँ खून खत्म चीख
कर हम जानते नही
हम क्या बनाते हैं
जब हम दफनाते हैं
एक हताश लडके की लाश बार-बार
एक बेबसी
थोडी सी मिटती है
फिर करने लगती है भाँय-भाँय
समय जो गया है उसके सन्नाटे मे राष्ट्रपति
प्रकट देते हुए सीख समाचार मे छपी
दुधमुही बच्ची खाती हुई भीख
खिसियाते कुलपति
मुसद्दीलाल
घिघियाते उपकुलपति
एक शब्द कहो नही कि वह लडका कौन था
क्या उसके बहनें थी
क्या उसने रक्खे थे टीन के बक्से मे अपने अजूबे
वह कौन कौन से पकवान
खाता था
एक शब्द कहो नही एक वह शब्द जो वह खोज
रहा था जब वह मारा गया।

सन्नाटा छा गया
चिट्ठी लिखते लिखते छुटकी ने पूछा

'क्या दो बार लिख सकते हैं कि याद
आती है ?'
'एक बार मामी की एक बार मामा की ?'
नहीं, दोनों बार मामी की'
'लिख सकती हो जरूर बेटी', मैंने कहा
समय आ गया है
दस बरस बाद फिर पदारूढ़ होते ही
नेतराम, पदयुक्त होते ही न्यायाधीश
कहता है। समय आ गया है—
मौका अच्छा देखकर प्रधानमन्त्री
पिटा हुआ दलपति अखबारों से
सुन्दर नौजवानों से कहता है गाता बजाता
हारा हुआ देश।
समय जो गया है
मेरे तलुवे से छनकर पाताल में
वह जानता हूँ मैं।

मुक्ति प्रसंग

राजकमल चौधरी

जन्म : सन् 1929, मृत्यु सन् 1967

कृतियां :

कविता-संग्रह : स्वरगंधा (1958), कंकावती (1964) मुक्ति प्रसंग (1966)

उपन्यास : आदि कथा (1959), नदी बहती है (1961) एक अनार एक बीमार (1964-65), मछली मरी हुई (1966) देह गाथा (1966), शहर था शहर नही था (1966)

कहानी-संग्रह : आदमी अब नही, आधी रात का सूरजमुखी, सामुद्रिक और अन्य कहानियां।

प्रस्तुत लम्बी कविता 'मुक्ति प्रसंग' पुस्तक रूप मे पहली बार 1966 मे प्रकाशित हुई थी।

[एक ही प्रार्थना हो सकती है आधुनिक मनुष्य की व्यक्तिगत प्रार्थना
अपनी मुक्ति के लिए—
सगठन और सस्थाओ के विरुद्ध हो जाना अर्थात शासन तन्त्र और
सेनाओ के
विरुद्ध हो जाना अपनी इकाई बचाने के लिए एक ही प्रार्थना
वास्तविक जीवन मे और कविता मे]

इस प्रकार स्थान-पात्रों में घुलमिल जाता था संगीत
बन जाता था जुलूस भूख-मार्च हाहाकार
रंग में अल्कोहल भाषा में केवल बीते हुए गलित व्रण केवल चीत्कार
आम-चुनाव में किस जाति को करना होगा मतदान
कौलिक पूजागृह से चुरा कर बेचे गये
शालिग्राम के बदले
खरीद लाये गये शक्तिपीठ योनिमुखों में सात नरकों की दुर्गन्धियाँ
भस्म हो गयी सती-दहन दुर्गन्धि में धुएँ में
इक्कीस साल पहले
इडा पिंगला सुषुम्ना मेरी जुड़वाँ बहनें
अन्तिम उपहार देकर मुझे नरहत्या क्षुधा मदिरा निद्रा नहीं केवल वमन
शाम-बाजार और टालीगंज के फुटपाथों पर बिकता हुआ
मेरा अवचेतन
और अब इतिहास-पुस्तक की तरह इस आपरेशन-टेबुल पर
रोशनी के प्रज्वलित गोलाम्बर में खुला पड़ा हुआ मेरा अस्तित्व
एक बुझा हुआ लैम्पपोस्ट मेरी दो आँखों में
जाँघों के बीच चौराहे पर मरा हुआ रक्तवर्ण साँप एक मरी हुई
नदी मेरे पाँवों में लिपटी हुई एक स्त्री
बरामदे पर खम्भे की आड़ में आत्महत्या करती है कहती है लेकिन अब भी
मुझको ही मार्कण्डेय-मुनि
भूत सागर में वटवृक्ष के नीले पत्ते पर सोया हुआ
वह आदिशिशु
मैं ही उसे बाँहों में उठाकर लाऊंगा
पृथ्वी पर···

मैं नहीं जानता लेकिन वह स्त्री कौन है मेरे चतुर्दिक सफेद गाउन सफेद
मास्क सफेद प्लास्टिक-दास्तानों में छिपे हुए
मेरी छाती और मेरे पेट पर झुके हुए कौन है इतने सारे लोग
मैं कुछ नहीं जानता हूँ
स्त्रियों नदियों बीमारियों भूख जन्म अपराधों ईश्वर मृत्यु दास्तोवस्की
हिरोशिमा विधान-सभाओं के विषय में कुछ नहीं
आदमी क्यों प्यार करता है युद्ध क्यों परिवार-नियोजन
क्यों बर्लिन की दीवार
क्यों देश-प्रेम क्यों अफीम की गोलियाँ क्यों चैप्लिन की फिल्में

क्यों ताशकन्द सम्मेलन क्यों रीढ की हड्डियों मे
गैंग्रीन
मादाम नू क्यों-क्यों दास-कैपिटल
क्यों सुकरात क्यों सेगाँव की बौद्ध भिक्षुणियाँ जल मरती हैं
क्यों गोर्गातुआ की कहानियाँ क्यों कश्मीर के लिए
सेनाएँ क्यों अजन्ता
क्यों एक ही युद्ध मेरी कमर की हड्डियों म और कभी वियतनाम में
होता है क्यों इन्दिरा गाँधी क्यों तुम वह
मैं क्यों कुछ नही कुछ नही
अतएव मैंने फोन किया ब्लैक आउट के अँधेरे म उस पार
अपने रेडियोग्राम मे डूबी हुई लडकी ने बताया सच हमारी माँ मर गयी कल
रात सोफे पर लेटी थी चुपचाप मर गयी
कोई कपड़ा नही है उसकी देह मे सिर्फ एक दाग है स्तनों के
बीच सीने पर
डूबी हुई लडकी को कोई उत्तर दिया नही मैंने केवल
पिछन सान भर के अखबार
रेडियोमेट कवियों और प्रकाशकों के पत्र टेलीफोन पुरानी पांडुलिपियाँ
मनी-प्लाट की लताएँ बरसों मे बन्द दीवार-घडी
कैलेण्डरों में सोये हुए बच्चे हरिन फूल
चिड़ियाँ झरने पहाडी गाँव औरतें चाय के बागान
बचपन का प्यार अनवम अपनी छोटी माँ का हाथ थामे हुए चकित मैं
हरसिंगार के नीचे खड़ा हूँ
पराजय के तीस वर्षों मे एकत्र की गयी धर्म सेक्स इतिहास
समाज-परिकल्पना ज्योतिष की किताबें शाक-टिकट
सिक्के सोवनिर
मैं बडे डाकघर के बहुत बडे लटरबॉक्स मे डाल आया
वापस आकर अपनी स्त्री से मैंने कहा पुलिस पत्रकार कवि-मित्र पार्टी-कामरेड
कोई भी मिलने आये सूचित करना है—
सबके लिए सबके हित मे अस्पताल चला गया है
राजकमल चौधरी
लिखने पढ़ने सोने गाँजा-अफीम-सिगरेट पीने मरने का अपना एकमात्र कमरा
अन्दर से बन्द करके दोपहर दिन के पसीने पेशाब वीर्यपात
मरमैले अँधेरे म लेटे हुए
धुआँ मेघ दुर्गन्धियाँ पीते रहने के सिवा

जिसने कभी कोई बडा काम नही किया अपनी देह
अथवा अपनी चेतना मे
इस उम्र तक
जटिल हुए किन्तु कोई भी प्रतिमा बनाने के योग्य नही हुए उसके अनुभव
नही निद्राएँ और नही पैशाची सभोग
यातनाएँ भी नही
मेरे फेफडो के अन्दर मलत्याग की वैष्णवी मुद्रा म बैठा हुआ
नकाबपोश नकली ईश्वर
देखता रहा है लगातार ऊँघती आखो से मेरी स्त्री का अवरुद्ध गर्भ विवर
कभी-कभी उसके झुर्रीदार वनमानुष पजे
मेरा व्याकरण छू रहे हैं
दोनो पावो से पैडिल मारता है वह मेरी किडनियो को कभी कभी
किसी भी नरभक्षी गुफा म कोकेन म किताबो म
किसी भी लाश पर मुड हुए घुटनो म
मुझको विक्षिप्त अथवा बेहोश करने से पहले नीचे उतरता हुआ अँतडियो की
काली सीढियो म अचानक गायब हो जाता है वह ईश्वर
वह ईश्वर सिफलिस भस्मासुर लाओ त्से इस कुरुक्षेत्र म पराजित
दुर्योधन मेरे शरीर के लावारिस
पब्लिक पार्क मे
और/अथवा
वियतनाम म उड़ी पुछ म यू० एन० ओ० मे तिब्बत बस्तर काले अफ्रीका मे
वह आगे बढता है राइफल का निशाना साधने के लिए
मेरे ही कलेजे पर मस्तिष्क पर
वह मेरा सैनिक वह मेरा जासूस वह मेरा ईश्वर
नागालैंड म विदेशी बमो से निरीह यात्री-रेलगाडिया उडाता है शान्तिपूर्वक
शान्तिपूवक कभी भेजता है कोरिया कभी क्यूबा कभी पाकिस्तान
कभी वियतनाम कभी अल्जीरिया
कभी अपनी सस्कृति कभी अपनी मशीन अपने टैंक जहाज-हथियार
मूल्य नियन्त्रण के लिए कभी उडीसा म दुर्भिक्ष
काहिरा मे कभी शक्ति-सम्मेलन युद्ध अणु-आयुध नियन्त्रण के लिए
कभी दण्ड कभी साम
कभी ईसामसीह और कभी वेश्याओ के नाम

निष्कंट लडकियो के बलात्कार हत्या पशु यन्त्रणाओ के सगीतस्वर टेप म

साग्रह भरता है इयान ब्रँडी कवि है
चार टाइपिस्ट लडकिया सचिवालय की छत से नीचे कूद जाती हैं
एक दिन एक साथ
चन्द्रमा के वक्षस्थल पर बैठ कर चित्राकन करता है सर्वेयर-विमान
वैज्ञानिक राजनेता और स्त्रीअगो के व्यापारी
कुल तीन ही प्रभु जातिया रह गयी हैं अब स्वयभू अस्तु
मैं क्रीतदास हूँ
प्रभु-जातियों के दासो का दासानुदास मेरे लिए
चिड़ियाँ हरिन फूल झरने नदी पहाडी स्त्रियां बच्चो सडकें और गाव
नही रह गये हैं
रह गये हैं अपने शरीर के क्षत-विक्षत मासपिंड—मैं
केवल मासपिंड किन्तु सोचता रहता हूँ
ईश्वर और सरकारी जासूसो के बारे मे चुपचाप सोचता रहता हूँ नही
यहाँ नही मैं इस कटघरे मे नही साक्षी दूँगा स्वीकार
नही करूँगा औरो के अपराध
मेरे वकील और मेरे न्यायाधीश यहाँ नही उस सफेद ठडे
कमरे मे
प्रतीक्षारत हैं मेरे लिए यहाँ नही बोलूगा
सफाई के वकीलो अभी मैं चुप हूँ और अभी मैं चिन्ताग्रस्त हूँ
केवल यह तमाशा देखता हूँ मैं अभी लोग किस तरह
ऊँची दीवारो पर सीढियाँ दर-सीढिया लगाकर
उस पार कूद जाते हैं आखे बन्द किये पेट और पिंडलियो पर रखे हुए
दोनो हाथ
और हाथो मे अपना ही कटा हुआ सिर आत्मरति और
परपीडा के लिए
फाइलों रजिस्टरो की बन्द खिडकियो म छिपकर काली-सफेद रोटिया
निगलते हैं किस तरह किस तरह अपने मालिको के लिए
रखते हैं कन्धे पर राइफल
माथे पर आय-करो के बही-खाते दिमाग मे व्यापारिक रहस्य व्यक्तित्व मे
लचीलापन बाजार-दरो का रोकडो का
गृहस्थ पुरुषो गृहस्थ स्त्रियो गृहस्थ परिवार-आयोजनो मे
जनतात्रिक सबधो को समझ लेना
अनिवार्य है
मेरे देश और मेरे मनुष्य का भविष्य निर्धारित करने के लिए अतीत

निर्धारित करने के लिये
मैं इतिहास पुस्तक की तरह खुला पड़ा हुआ हूँ
लेकिन मेरा देश मेरा पेट मेरा ब्लाडर मेरी अँतड़ियाँ खुलने से पहले
सर्जनों को यह जान लेना होगा
हर जगह नहीं है जल अथवा रक्त अथवा मांस
अथवा मिट्टी
केवल हवा फोड़े जख्म और गन्दे पनाले हैं अधिक स्थानों पर इस देश में
जहाँ सड़ कर फट गयी है नसें वहाँ हवा तक नहीं
ऊपर की त्वचा चीरने पर आग नहीं निकलेगी नहीं धुआँ
जठराग्नि दावानल
सब बुझ गये अचानक पहले पन्द्रह अगस्त की पहली रात के बाद
अब राख ही राख बच गया है पीला मवाद

ग्यारह बजकर उनसठ मिनट पर हर रात शहीद-स्मारक के नीचे नंगी होती है
पागल काली एक मरी हुई स्त्री
उजाड़ आसमान में दोनों बाँह फैला कर रोने के लिए
रोते हुए सो जाने के लिए पानी और अनाज के देवताओं से भीख माँगती है
तिरंगा फहराने के अपराध में मार डाले गये
1942 के छात्रों के नाम पर
बारह दफा उसे चुप करती है राज्य-सचिवालय की आदमकद घड़ी
कुल एक मिनट बाद इस नाम पर कि पाँच लाख
पच्चीस हजार छह सौ मिनटों के निर्मम यन्त्र-चक्र में होते हैं
उत्पादित अनायास
एक सौ बीस लाख पच्चीस हज़ार भारतवासी
जनसंख्या के ऊर्ध्वमुखी ग्राफ में भारत भाग्य-विधाता चूहों से
कम खतरनाक नहीं होते
अतएव अरण्य-रोदन सुनकर मैंने तय किया था
स्मारकों और सचिवालयों को हमेशा के लिए भूल जाऊँगा
लेकिन
वह पागल काली मरी हुई आतंकित अनगढ़ स्त्री चिपकाऊँगा
अपने ओठों में उसके ओठों में अपने शब्द
वाक्य भाषाएँ
अपने मुहावरों में उसकी बंजर धरती को नहलाऊँगा
कविता लोकतन्त्र दोनों के लिए सुविधाजनक-स्वास्थ्यदायक यही होगा

बस्तर नागालैंड कालिम्पोंग हजारीबाग की
काली पथरीली चट्टानें
फ्री स्कूल स्ट्रीट अथवा पार्लियामेन्ट स्ट्रीट में मूर्तिमान स्थापित करना
करने लायक और क्या बच गया है कर्म
धारण करने लायक और क्या रह गया है अपना धर्म
आकण्ठ डूब गये हैं
जितने भी ये प्राचीन सत्कार्य राजनीतिक सती विधवाओं को सरकारी
और सग्रहकारी आत्महत्याओं में
शवदाह के लिए उपयुक्त हैं निजी सेक्टर के नृसिंहों की
जनजघाएँ
स्थान-काल-पात्र सब न्यायिक नैयायिकों के एक्ट जिल बजट में
सिमट आये हैं दूषित-दुर्गन्धित

जीना चाहते थे जीवन धारण किये रहना चाहते थे यही था
बालखिल्य ऋषियों का पाप इसीलिए उन्हें बार-बार
चौदह बूंद मात्र दूध के लिए
लटकना
पड़ता
था
लोकवृक्ष पर अटके हुए चमगादड़-स्तनों में
अपने रोग अपनी भूख अपनी नींद अपने युद्ध में प्रत्येक आदमी
बालखिल्य-ऋषि है अपने अन्दर
किसी चमगादड़ मन्त्री-उपमन्त्री अन्नपूर्णा उग्रतारा की एक मूर्ति
अपने घर अपने मन्दिर में स्थापित करता है
अपने पाँवों में बाँधता है एक तक्षक-साँप अथवा एक रक्तधारा नदी
भगीरथ के वंशज एक पुण्यदेहा जाह्नवी स्पर्श के बिना
मोक्ष नहीं पाएँगे
और अब 1966 में स्मरण करने से क्या लाभ है जाह्नवी के सहस्रों पुत्र
मार डाले गये थे तीन रंगों का एक चिथड़ा
अपने ही रक्त में रंगे गये आकाश में फहराने के लिए
चौबीस वर्ष पहले जो बीत गया है उसे दुहराया क्यों जाए
पाठ्यपुस्तकों में अथवा दलालों के द्वारा लिखे गये इतिहासों में
इस नाटक के प्रारम्भ में ही अतएव
अपने कवि से कहना चाहता था मैं आत्मरक्षा के लिए

आओ प्रणति मुद्रा मे
इस मूर्ति के सम्मुख झुक जाएँ साष्टांग आत्मसमर्पित
स्वीकार कर लें इस युग के समस्त पाप
सीता और अहल्या से अब तक की सारी भ्रूण-हत्याएँ हमने की है
हमने ही असुरो अग्निपिंडो चन्द्रमाओ कुमारी-कन्याओ से
किया है देवता-ब्राह्मण रक्त-तर्पण
दधीची-अस्थियो को प्रभुसत्ता के दासो की हत्या मे उपयोगी किया है
गलियो दूकानो कार्यालयो कारखानो राजभवनो के अहाते में
हड्डियाँ चबाते हुए सारे श्वान-पुरुष
रक्त-मांस बेचते हुए
हमारे आत्मज है हमारा ही रक्त वीर्य मज्जा रोग है उनमे
साढे दस हजार वर्षों के अथक परिश्रम से
इस ऊष्णगर्भा उर्वरा धरती को भरघट स्वेच्छानुसार हमने ही बनाया है
मनु शत रुपा अग्नि मे सत्ता का विषवृक्ष
हमने ही लगाया है
आओ इस राजभवन मे इस कारागृह मे अतएव चिन्ताविमुक्त हो जाएँ
उतार डाले अपने चेहरे अपनी नकाब
अपना इतिहास-कवच अपना वर्तमान शिरस्त्राण
नग्न निश्शस्त्र हो जाएँ ग्यारह बजकर उनसठ मिनट के सामने
अपने मुट्ठियो मे थामे हुए अपना व्याकरण
पुस्तकालयो विश्वविद्यालयो के चौराहो पर खड़े हो जाएँ सुने नगरवासी सुनें
सम्राट हर्षवर्द्धन आज वापस लेगे प्रजाजनो से राजपाट
अन्नसग्रह स्वर्ण रथ माणिक सेना मुद्राएँ
सारा कुछ जनता से वापस लेकर अर्पित करेंगे ससदीय अधिनायकवाद के
चरणो पर
नीले कांच का फूलदान है मेरा देश
नये हर्षवर्द्धन जयवर्द्धन के लडखडाते पाँवो की ठोकर से
टूट कर बिखर जाता है युद्ध और व्याधियो की इस वन्ध्या ऋतु मे
शीशे के बेडौल बदरग टुकडे
मेरी देह की काली गुफाओ मे धँसते हैं मेरे अन्दर अनायास वह
पौराणिक सर्प आकाशवाणी के राष्ट्रीय गीतो से
लहूलुहान हो जाता है
फिर भी गर्भान्धो की दास वृत्ति पुष्पमालाएँ शिष्टाचार देशभक्ति कोकेन
लाता है नसो म नाभिरस-कस्तूरी-सचार

रोशनी की ग्रन्थ मार्रापिडो की वेद ध्वनियाँ
रगों की आकृति वर्णों के दस आयाम
देह की राजनीति
देह की राजनीति स विकट सन्निकट और कोई राजनीति नही है सजय
अन्न और अफीम की राजनीति यही शुरू होती है
जन्म लेता है यहीं मृग मारीच
लोक सभा म अन्न मन्त्री कहते हैं बसते हैं कोई पाँच अरब चूहे
इस देश म
बजट के अको टैक्सो के रेखागणित मे डूबे हुए इस देश मे चूहो की
जनसख्या सबसे भयानक प्रश्न है
लूप या इस्तेमाल करना चाहिए निरन्तर आत्मसयम के लिए
इस प्रश्न पर नियन्त्रण के लिए
यह प्रश्न ही है हमारा वर्तमान
केवल वर्तमान म जीते हैं अब समस्त प्रजाजन
मर जाते हैं अतीत मे और भविष्य में मर जाते हैं
भीड जुलूस लाठी चार्ज जन-आन्दोलन आम सभाओ के श्रोता वक्ता भोक्ता
गेहूँ के सिवा कोई बात नही कहन
आदमी चन्द्रमा को बना ही डाले अपना उपनिवेश
आदमी ईश्वर शैतान धर्म नीति से स्वाधीन हो जाए क्या होता है
आदमी लिखे एब्सॉडिटी का दर्शनविधान
आदमी सुदूर दक्षिण वन जातिया म ढूढता रहे यज-पौधो की समाधि
आत्मसाक्षात्कार
आदमी वर्ल्ड-बैंक से तीस करोड डालर से आये
आदमी खुद बिके अथवा बेच ही डाले अपनी स्त्री अपनी आँखें अपना देश
मगर भीड अब खाने के लिए गेहूँ
और सो जाने के लिए किसी भी गन्दे बिस्तरे के सिवा कोई बात
नही कहती है
प्रजाजनो के शब्दकोश म नही रह गये हैं दूसरे शब्द दूसरे वाक्य
दूसरी चिन्ताएँ नहीं रह गयी हैं
किन्तु भीड से विच्छिन्न असपृक्त रहकर भी भीड से मुक्त मैं हो नही पाता हूँ
मुक्त हो जाना कविता से पहले और मृत्यु से पहले
मुक्त हो जाना असभव है

पेथेडीन इन्सुलिन दवाखाने बच्चो के स्कूल मे फीस क्षमा कराने के लिए

नीद के लिए सिनेमाघर राशन की दूकान रेडियो स्टेशन मे
इन्दिरा गाधी के बचपन पर वार्तालाप दुर्गा समारोह
रामकृष्ण-आश्रम मे
सरकारी दूकान से गाँजा अफीम और खरीदना 50 नम्बर की शराब
आय कर विभाग को लिखना एक ही जवाब
इस उम्र तक दो हजार रुपयो से ज्यादा किसी साल मेरी हुई नही किसी तरह
आमदनी चायखानो म बहस
कभी अपने आदमी कभी परायी औरतो के बारे मे
पुस्तकालय रेल-यात्रा श्मसान अपने अकाल-मृत सबधियो के अस्थि फूल
लाने के लिए जुलूस के साथ
चलता हुआ मैं अपने गाँव की नदी का नाम भूल जाता हूँ
बालीगज झील के अँधेरे म जकड लेते हैं
मुझ नीले ऑक्टोपस
शेयर बाजार की चढती उतरती सीढियाँ लहूलुहान कर देती हैं मेरा चेहरा
योगासन करती हुई देवकन्याएँ फ्री स्कूल स्ट्रीट म
शहर की सारी बीमारियाँ तोहफे म देती है मुझे बिना माँगे
बिना माँगे मैं टाइपराइटर मशीन
बन जाता हूँ
डलहौजी स्क्वायर के दफ्तरा का दफ्तरो के मालिको का मुखपात्र
कभी कभी कामू कभी कभी सार्त्र मगर
अब भी याद आता है लिफ्ट से चढते हुए और
लिफ्ट से उतरते हुए नौकरी की दरख्वास्तें इटरव्यू की कतारें भरते हुए
मेरे दोस्त अपनी पत्नियो के सहज सतीत्व पर निर्विकार फिर से
विश्वास करने लगे हैं
हँसने लगता हूँ मैं लिफ्ट के नीचे
हवडा ब्रिज के नीचे
महारानी विक्टोरिया की महाकाय मूर्ति के नीचे खडा होकर
मैं हँसने लगता हूँ
हँसता हुआ गाने लगता हूँ भारत भाग्य विधाता
जय हे जय हे
मुझे पकड लेती है अपने साथ ले जाती है लालबाजार के सवाल घर मे
भारत की शान्तिप्रिय पुलिस
एतिहासिक मूर्तिया का शीश भग अपराध है गुरुतर
अपराध है

शहीद-स्मारक के नीचे रोते हुए नंगे हो जाना निरापद रहने के लिए

जिसे बेडौल टुकड़ों में बाँट कर अलग-अलग चाहते हैं
भोग करना बनिये-सौदागर
इस दुनियाँ की सबसे नंगी सबसे मजबूत औरत का नाम है वियतनाम
उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम
उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया
सफेद अफ्रीका और काला अफ्रीका
पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी
पाकिस्तान और हिन्दुस्तान
सफेद अमरीका और काला अमरीका
जॉन्सन का अमरीका और एलेन गिन्सबर्ग का अमरीका
इन्दिरा गांधी का हिन्दुस्तान
और मलय रायचौधुरी का हिन्दुस्तान
इस दुनियाँ की प्रत्येक मजबूत औरत नंगी और दो टुकड़ों में बँटी हुई
यह औरत मेरी माँ और मेरी बीवी मेरा देश और मेरी जिन्दगी
ईसामसीह की आधी देह पेकिंग में
और आधी देह मास्को न्यूयार्क में क्रॉस पर लटकी हुई
और बाकी शहरों में
कवियों की शब्दावली में लिये गये शान्ति के संयुक्त वक्तव्य
हाइड्रोजन बम परीक्षण में पंख फड़फड़ाते हुए
कबूतरों की मौत मर जाते हैं
और बाकी शहरों में राजनीतिक वेश्याओं ने पीला मटमैला अँधेरा फैला रखा है
अपनी देह को उजागर करने के लिए
नई दिल्ली में और ढाका-करांची में अब कोई फर्क नहीं है
कोई फर्क नहीं है एक गुलाम-शहर से दूसरे गुलाम-शहर में गोश्त और
किताबें और धर्म-प्रवचन
एक साथ बिकते हैं एक ही कीमतों में बिकते हैं
और गुलाम-शहरों का एकमात्र एकमात्र बच गया है लोकनायक अब
007 जेम्स बॉंड
चीनी अजदहे के पेट को चीरकर बाहर खींच लाएगा
हमारे देश की चौदह हजार पाँच सौ वर्गमील पुण्यभूमि वही केवल वही
नायक है 007
नायिका है किसी भी फिल्म नौटंकी नाटक हवामहल जैनेन्द्र इयान-फ्लेमिंग की

वह स्त्री जो हर अध्याय म एक बार
अथवा अन्तिम अध्याय म सौ बार नगी होती है बहुजनहिताय
और हमारे भाग्य विधाता डालर रूबल पौड
क्षेत्रो की भिक्षाटन यात्राओ म क्रमश निर्लज्ज पारगत होते जा रहे है साहसी
और लॉकहेड 15 प्रति घटे पैंतालीस सौ मील उडता है
और एशिया की मादाम नू योरप के जगलो मे अपनी लडकी के साथ
खो जाती है
मोराविया की दो औरतें केवल दो औरतें
औरपरमवीरचक्र स्वीकार करत हुए अपने मार डाले गये पति के शौर्य विक्रम की
बातें करती है कविता त्यागी
और हिन्दुस्तानी रुपये पर छपी हुई है जवाहरलाल नहरू की तस्वीर
और इस तस्वीर की कीमत अभी तक
कुल 36 5 प्रतिशत नीचे गिरी है हम धन्यवाद करना चाहिए देशी सिडिकेट
और विदेशी विश्वबैंक को
और रुपये के अवमूल्यन के साथ भारतीय संस्कृति और सुन्दरता
मूल्यवृद्धि करती जा रही है अमरीका योरप म
बलवन्त गार्गी आम के पजाबी पेड न्यूयार्क म लगा आने हैं
बीटल्स लडके बजाते है लगातार
रविशकरी सितार

सोलन के तीसरे पाइन्ट म अपने गाव की बातें शुरु करत है फणीश्वरनाथ रेणु
कमली साजमनी नैना जोगिन
तीसरी बोतल म अरुण भारती अपनी फिल्मा का सहनायक बन जाता है
फ्रेजर रोड की बडी दुकानो से इत्र की शीशियाँ
और फूलदान खरीदन के लिए
तीसरे ग्लास मे शम्भूनाथ मिश्र कहता है झूठ है साहित्य इतिहास प्रेम साथ चलने के
सारे वाद झूठ हैं सच है केवल गले म लटका हुआ ताबीज और वह
मीरा और सजय के पास लौट आता है
अतीत अथवा भविष्य की य व्याख्याएँ देखने-समझने के लिए किन्तु
मैं कभी तीसरे ग्लास तीसरे पाइन्ट तीसरी बोतल की
तीसरी कसम का गुलफाम नही हो पाता हूँ अपने इस गतिहीन वर्तमान म
होने के बावजूद
नही हो पाने की यह विडम्बना मेरे प्रभु
मेरे ही लिए क्या

मेरे ही लिए क्यों सेन्ट्रल होटल से सेन्ट्रल होटल की दूरी सात समुद्र
चौदह नदियों की दूरी बनती है
क्यों नहीं है मेरे लिए कोई नाम कोई नदी कोई चिड़ियाँ कोई फूल कोई सिद्धांत
कोई दरख्त कोई राजनीतिक दल कोई जंगल
कोई सांप कोई गांव
कोई स्त्री कोई सड़क कोई संगीत कोई नशा कोई प्रेम कोई घृणा
कोई घर कोई आँगन कोई छाँव
वापस लौट जाऊँ मैं जहाँ एक बार फिर से अपनी यात्रा
शुरू करने के लिए
क्यों नहीं है मेरे लिए जीने में अथवा अन्ततः मर जाने में कोई कारण
कोई सत्य कोई न्याय कोई आकर्षण
जब कि अपने अस्तित्व अपने अनस्तित्व का संपूर्ण निर्णय
मैंने छोड़ देना चाहा था
अपनी उग्रतारा पर कविता से पहले
और मृत्यु से पहले भी छोड़ देना चाहा था शकाहीन-अर्थहीन जीवन
और मरण का अकगणित सँभालने के लिए
श्रीचक्र के प्रस्फुटित कमल पर काममुद्रा में खड़ी
वह आदिकन्या
मैंने छोड़ देना चाहा था अपना शिथिल शरीर उसके पाँवों के समीप
निर्णय के लिए अथवा समर्पण

अब मेरे जख्मी घुटनों से अपना चेहरा उठा कर मुझे बताओ कब तक मैं
अपने जासूसों अपने पड़ोसियों अपने रक्त में
तीर्थस्थान करते हुए देवताओं से मुक्त हो पाऊँगा या नहीं
मेरी सड़कें मेरी शिराएँ मेरा यह छोटा सा देह-नगर फोरसीटर-विज्ञापनों
नकली दवाओं से
दैनिक समाचारपत्रों डी० आई० आर० आम-चुनाव पुलिस-कानूनों से
कैंसर संसदीय अधिनायकवाद आकाशवाणी से
ऋणात्मक अर्थतन्त्र ट्रैफिक की लाल-हरी-पीली बत्तियों से छुटकारा
अवकाश स्वाधीनता विच्छिन्न रहने की
सुविधा
कभी पाएगा या नहीं तुम मुझे बताओ राजकमल चौधरी मुझे बताओ
इस आपरेशन-टेबुल पर निर्जीव पड़े हुए
तुम्हारे शरीर से निकलकर मैं अपने लिखने पढ़ने

सोने रहने के कमरे में
किसी दिन जा पाऊंगा या नहीं
छत से झूलती हुई रेशमी रस्सी में अपने सपनों और अपने नील का
हिंडोला झूला टाँगने के लिए
अपने शरीर से मुक्ति दो मुझे अपने शहर अपनी दुनियाँ में
चले जाने दो

…सत्तर रुपयों का यह कमरा मेरा कमरा रहने दिया नहीं गया था आवाजें
दरवाजे तोड़ने लगी थीं
झनझनाती थीं खिड़कियों के शीशे तानाशाह रोशनी सर्चलाइटों की
साइरन की लम्बी जहरीली चीखों के बाद
फौजी स्वर में हर दफा कोई गरजता है बाहर चले आओ
अभी बम गिरेगा बाहर चले आओ अभी अकाल दुर्भिक्ष पड़ेगा बाहर
चले आओ अभी फटेगी ज्वालामुखी यह शहर
भस्म हो जाएगा
बाहर चले आओ सुरक्षा-खाइयों में छिपने के लिए
इस अपाहिज बेशर्म आवाज को मुझसे जोड़ने के लिए डाकघर अखबार
टेलीफोन दवा की दुकानों मनिआर्डर
उम्र के गर्म दिन बेचने वाली स्त्रियों आकाशवाणी के
कार्यक्रमों का महाजाल
जिसने बुना है
कोई शिकायत नहीं है मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है उन लोगों से मुझे
जो न्यूजप्रिन्ट पर लिख रहे हैं मेरे देश का इतिहास
अथवा मेरे शरीर का आख्यान टेम्प्रेचर-चार्ट पर
कोई शिकायत नहीं
शहर के फुटपाथों पर मैं अफीम और प्रकाशकों की तलाश में
घूमता था अकेला और चुपचाप
अपने बेरोजगार दोस्तों के साथ पीकर 50-नम्बर रिक्शेवालों रिफ्यूजी-स्त्रियों
विधायकों पाठ्यपुस्तक-विक्रेताओं सरकारी ठेकेदारों से
झगड़ता हुआ
गंगानदी के घाट पर खड़े होकर अस्पताल और अदालत के यात्रियों से लदे
दोमंजिले स्टीमर और सुबह के धुंधलके से ऊपर उभरता हुआ
सूरज चुरा ले भागने की योजनाएँ
अपने छोटे भाइयों को समझाते रहना घृणा करनी चाहिए

वेतनभोगी शिक्षकों विवाहित महिलाओं से
लिखते रहना अपने इलाके के राज्यमन्त्री के लिए भाषण परिवार-नियोजन
पचसाला आयोजनों पर लेख
मैं चला जाता था बाँसघाट-श्मसान अथवा ईसाई ग्रेवयार्ड
किसी सफेद चबूतरे पर रात काटने के लिए
—कोई शिकायत नहीं थी मुझसे नगर-वासियों को पुलिस को
और अखबारनवीसों को
लेकिन
अचानक एक रात ब्लैकआउट में बेहोश इस नगर के आदिम अँधेरे में
मैंने उसे देख लिया शहीद स्मारक के नीचे
रोते हुए वह नंगी थी और खून से लथपथ थी और वह
कराहती हुई भागी जा रही थी
गलियों में मरघट में और राजभवनों में पुकारती हुई मेरा ही नाम बार-बार
गिरती हुई ठोकरें खाती हुई हँसती खिलखिलाती हुई
मैंने उसे देखा उसके कटे हुए दोनों स्तनों को जोड़कर बनाया गया है
पृथ्वी का गोलाम्बर
और वह बुझे हुए लैम्प पोस्टों को जलाने की कोशिश में
लहूलुहान हो गयी है मैंने उसे देखा
और बार-बार उसके मुँह से अपना ही नाम सुन कर मैं अपने कमरे में
भाग आया
मैं अपनी किताबों और अफीम गाँजे में बन्द हो गया
वह मेरी बुझी हुई आँखों में
मैं उसके स्तनों के गोलाम्बर में बन्द
अब हम कभी बाहर नहीं आएँगे न साइरन की चीख सुनकर और नहीं
राशन खरीदने के लिए
और हम दोनों एक-दूसरे की नींद में सोये हुए थे
जब मेडिकल अस्पताल की एम्बुलेन्स-गाड़ी हमारे कमरे के सामने आकर
रुक गयी

धीरे धीरे उठी और सफेद प्रेत-छायाओं से भरने लगा आपरेशन थियेटर
ईश्वर उतरने लगा मेरी अंतड़ियों की चक्करदार सीढ़ियों से नीचे
और नीचे किडनी से ब्लाडर में होकर
मूत्र मार्ग के भीतरी दरवाजे पर लोहा पीटते हुए हथौड़े से लगातार दस्तक देता हुआ
एनस्थेसिया की पानी टोपी में डूबा हुआ मेरा चेहरा

मेरा अस्तित्व
अपनी अलौकिक नग्नता म डूब गया है
सज्ञाविहीन ज्ञानहीन
समय अब मेरे लिए केवल नीलापन है केवल नीलापन शून्य है
शून्य है स्थान काल और पात्र गतिहीन आकारहीन
शिवि फू कु कु फू
शिकि शिकि सोकू जे
कु यु सोकू जे
शिवि
अपनी कविता से पहले पाठ करता है यह जेन मन्त्र एलेन गिन्सबर्ग
आकार से भिन्न नही है शून्य शून्य से भिन्न नही आकार
आकार ही शून्य है शून्य है साकार
एनस्थेसिया की काली टोपी से ढका हुआ चेहरा गति है
और अगति है
और इतिहास पुस्तक की तरह खुला हुआ अस्तित्व है और नही है
एक ही स्थान एक ही काल एक ही पात्र म
मेरे होने और नही होने की इस अनुभूति ने मुझको
उसके पावो के नीच
शिव मूर्ति स्थापित कर दिया है समाधिस्थ
अब तुम मेरी पूजा करो उग्रतारा मैं सोया हुआ वर्तमान हूँ शिव हूँ
तुम्हारा सपूर्ण आत्मनिवेदन
स्वीकारने का एकमात्र मुझको रह गया है अधिकार
तुम्हारे पाँवो के नीचे होकर भी तुम्हारी जिह्वा मे तुम्हारे स्तनो मे
तुम्हारे योनिमार्ग म
तुम्हारी रक्त नलिकाओ म तुम्हारे हृदयपिंड म तुम्हारे माँस मज्जा अस्थियो म
तुम्हारे गर्भाशय म होने का
बार-बार इसी प्रकार होते रहने का अधिकार
मैंने उपलब्ध किया है इस प्रज्ज्वलित श्मसान शीतल हिमखण्ड
आपरेशन-टेबुल पर
कविता से पहले और मृत्यु से पहले
तुम मेरी पृथ्वी हो और मैं तुम्हारा इष्ट देवता हूँ और कवि हूँ तुम मुझे
जन्म देती हो और मेरे साथ रमण करती हो
तुम मुझे मुक्त करती हो
और मैं तुम्ह मुक्त करता हूँ अपने मरण म

अपनी कविता में

प्रसग-एक

मृत व्यक्ति कोई भी एक मृत व्यक्ति केवल एक मृत व्यक्ति नहीं है किसी भी प्रकार
सरकारी ट्रांसपोर्ट से कुचल दिये गए कुत्ते अथवा तालाब की
सतह पर बिल्ली की फूली हुई
लाश से अधिक कवितामय अधिक सुन्दर अधिक कामोत्तेजक होता है मृत व्यक्ति
अस्पताल के पलग में सोया हुआ बेहोश देख कर मुझको
एक अपरिचित स्त्री
मालमपुर्सी के लिए आयी हुई यही कहती थी

प्रसग दो

मेरा जन्म हुआ था त्रिशूली पहाड़ की मन्त्रसिद्ध गुफा में काली-मूर्ति के पार्श्व में
सब आत छोड़कर मुझको चली गयी थी मेरी माँ
ग्रहण करने के लिए जलसमाधि
अपनी मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व उसने स्वीकार किया था अपना अपराध
अथवा वह वापस आ गयी थी देखकर नीचे घाटी में एकाग्र प्रतीक्षारत
शिशुभक्षी गिद्ध
त्रिशूली गुफा के उस सकेत पथ पर अतएव बिखरी हुई
चट्टानों में अलग-अलग
बँटा हुआ है मेरा जीवन कावा खण्डों में कटा हुआ मेरी आँखों का आकाश
जिस पथ से भागती हुई मेरी मा के घुटने
पाँवों की उँगलियाँ तलुवे पिंडलियाँ नुकीली चट्टानों से हो गये थे
लहूलुहान   लहू के छींटे
मेरे आकाश के अलग अलग टुकड़ो को सुर्ख़सुर्ख़ी करते हुए
अब जिन्हें फिर से एक अखण्ड सुमेरु बनाने के लिए मैं एक-एक चट्टान क्रमश
राजेन्द्र सर्जिकल अस्पताल के नीचे बहती हुई
गंगानदी में
फेंकता जा रहा हूँ अपनी माँ तीर्थमयी के आरण्यक संस्मरणों में
आकाश के एक एक टुकड़े अलकनन्दा में
अनन्त कविता में
धारा चली आने के कारण ही अनिवार्य हो गया था माँ के लिए
वरण कर लेना मृत्यु
अनन्त कविता में उसे जीवित करने के लिए त्रिशूली गुफा में

मन्त्रसिद्ध मैंने जन्मग्रहण किया है

प्रसग-तीन

प्रत्येक बार होता है प्रकृति के साथ निद्रामयी अचेतन समाधिस्थ प्रकृति के साथ
बर्बर पैशाची बलात्कार
जब भी मैं रचना चाहता हूँ कोई स्वप्न कोई कविता
रक्त-नलिका से ब्रह्म-नलिका तक कोई यात्रापथ मुझे सभोग करना होता है
विपरीत मुद्रा बलरकृता होकर ही वह मदालसा
सृष्टिध्वजादण्ड धारण करती है अपने षट्चक्र-रथ पर रति-व्याकुल होकर उत्तप्त
रचना मे योगिनी सहयोगिनी
स्थान-काल-पात्र की शारीरिक स्थितियों का अगर शीलभग
करती है मेरी कविता
उसे अब और कुछ नही करना चाहिए

प्रसग-चार

सुरक्षा के मोह मे ही सबसे पहले मरता है आदमी अपने शरीर के इर्दगिर्द
दीवारें ऊपर उठाता हुआ
मिट्टी के भिक्षापात्र आगे और आगे और आगे बढाता हुआ गेहूँ
और हथियारबन्द हवाईजहाजो के लिए
केवल मोहविहीन होकर ही जबकि नगा भूखा बीमार
आदमी सुरक्षित होता है

प्रसग-पाच

अपनी देह-सीमाओं के विषय मे ईश्वर के प्रति
एक ही प्रार्थना हो सकती है आधुनिक मनुष्य की व्यक्तिगत प्रार्थना
अपनी मुक्ति के लिए—
सगठन और सस्थाओ के विरुद्ध हो जाना अर्थात् शासन-तन्त्र और सेनाओं के
विरुद्ध हो जाना अपनी इकाई बचाने के लिए एक ही प्रार्थना
वास्तविक जीवन मे और कविता मे

प्रसग छह

तरह हजार वर्ष पहले मेरुदण्ड पर्वत की काली चट्टानो से तराश ली गयी
तरह वर्ष की एक लड़की का नाम है उग्रतारा
जबकि वह उग्र नही है और वह तारा भी नही है मेरे लिए केवल

उघ्रतारा है

प्रसग-सात

मुक्ति के विषय म सोचता हुआ मैं सो गया था बेहोश लेकिन कसे हुए दो पजे
मेरा गला दबाने लगे कोई चीख तक नही निकलेगी
मेरे कण्ठ रन्ध्र से
प्राणरक्षा के लिए अपने शरीर से बाहर निकलकर
मैं सामने दीवार पर नीले कीडे की तरह चिपक गया पलग पर छटपटाती
लाश देखता हुआ
मेरे ही दोनों पजे मेरी गर्दन दबाये जा रहे हैं इसलिए शरीर से
बाहर निकल कर ही मुक्ति के विषय म
निर्णय किया जा सकता है

प्रसग-आठ

आदमी को तोडती नही हैं लोकतान्त्रिक पद्धतियाँ केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे धीरे अपाहिज
धीरे धीरे नपुसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त देशप्रेमी नागरिक
बना लेती हैं
आदमी को इस लोकतन्त्री ससार से अलग हो जाना चाहिए
चले जाना चाहिए कस्सावो गांजाखोर साधुओ
भिखमंगों अफीमची रडियों की काली और अन्धी दुनियाँ म मसानो मे
अधजली लाशें नोच कर
खाते रहना श्रेयस्कर है जीवित पडोसियो को खा जाने से
हम लोगो को अब शामिल नहीं रहना है
इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए खत्म कर देने की
साजिश म

पटकथा

धूमिल (वास्तविक नाम सुदामा पाण्डेय)
जन्म 1936, मृत्यु 1975

कृतियाँ

कविता-संग्रह संसद से सड़क तक (1972)
कल सुनना मुझे (1977)
प्रस्तुत कविता पटकथा उनके कविता-संग्रह 'संसद से सड़क तक' में संकलित है।

[सुनो !
आज मैं तुम्हे सत्य वह बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है। इस दुनिया मे
भूखे आदमी का सबसे बडा तर्क
रोटी है।]

पटकथा

जब मैं बाहर आया
मेरे हाथों में
एक कविता थी और दिमाग में
आँतों का एक्स-रे।
वह काला धब्बा
जो कल तक एक शब्द था,
खून के अँधेरे में
दवा की शीशी का ट्रेडमार्क
बन गया था।
औरतों के लिए गैर ज़रूरी होने के बाद
अपनी ऊब का
दूसरा समाधान ढूँढ़ना ज़रूरी है।
मैंने सोचा!
क्योंकि शब्द और स्वाद के बीच
अपनी भूख को ज़िन्दा रखना
जीभ और जाँघ के स्थानिक भूगोल की
वाजिब मजबूरी है।
मैंने सोचा और संसार के
मलिन इलाकों में
अपनी आदतों का शिकार
होने से पहले ही
बाहर चला आया।

134 . कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

बाहर हवा थी
धूप थी
घास थी
मैंने कहा आजादी ।
मुझे अच्छी तरह याद है—
मैंने यही कहा था
मेरी नस नस में बिजली
दौड़ रही थी
उत्साह में
खुद मेरा स्वर
मुझे अजनबी लग रहा था
मैंने कहा—आ जा दी
और दौड़ता हुआ खेतों की ओर
गया । वहा कतार के कतार
अनाज के अँकुए फूट रहे थे
मैंने कहा – जैसे कसरत करते हुए
बच्चे । तारों पर
चिड़ियाँ चहचहा रही थी
मैंने कहा— काँसे की बजती हुई घटियाँ
खेत की मेड़ पार करते हुए
मैंने एक बैल की पीठ थपथपाई
सड़क पर जाते हुए आदमी से
उसका नाम पूछा
और कहा—बधाई
घर लौटकर
मैंने सारी बत्तिया जला दी
पुरानी तसवीरों को दीवारों से
उतारकर
उन्हें साफ किया
और फिर उन्हें दीवार पर (उसी जगह)
टाग दिया ।
मैंने दरवाजे के बाहर
एक पौधा लगाया और कहा—
वन महोत्सव ··

और देर तक
हवा में गरदन उचका-उचकाकर
लम्बी-लम्बी साँस खींचता रहा
देर तक महसूस करता रहा —
कि मेरे भीतर
वक्त का सामना करने के लिए
औसतन जवान खून है
मगर, मुझे शांति चाहिए
इसलिए खाली दरबे में
एक जोड़ा कबूतर लाकर डाल दिया
'गूं गुटरगूं ··· गूं ··· गुटरगूं ···'
और चहकते हुए कहा—
यही मेरी आस्था है
यही मेरा कानून है

इस तरह जो था उसे मैंने
जी भरकर प्यार किया
और जो नहीं था
उसका इन्तजार किया।
मैंने इन्तजार किया —
अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा।
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में
अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा
अब कोई दवा के अभाव में
घुट-घुटकर नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा
अब यह जमीन अपनी है
आसमान अपना है
जैसा पहले हुआ करता था —
सूर्य, हमारा सपना है।

मैं इन्तजार करता रहा
इन्तजार करता रहा
इन्तजार करता रहा
जनतन्त्र, त्याग, स्वतन्त्रता
सस्कृति, शान्ति, मनुष्यता
ये सारे शब्द थे
सुनहरे वादे थे
खुशफहम इरादे थ
सुन्दर थे
मौलिक थे
मुखर थे
मैं सुनता रहा
सुनता रहा
सुनता रहा
मतदान होत रहे
मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे
उसी लोकनायक को
बार बार चुनता रहा
जिसके पास हर शका और
हर सवाल का
एक ही जवाब था
यानी कि कोट के बटन होल मे
महकता हुआ एक फूल
गुलाब का।
वह हमे विश्वशान्ति और पचशील के सूत्र
समझाता रहा। मैं खुद को
समझाता रहा — जो मैं चाहता हूँ—
वही होगा। होगा—आज नही तो कल
मगर, सब कुछ सही होगा।'

भीड बढती रही।
चौराहे चौडे होते रहे।
लोग अपने-अपने हिस्से का अनाज
खाकर — निरापद भाव से

बच्चे जनते रहे
योजनाएँ चलती रहीं
बन्दूकों के कारखानों में
जूते बनते रहे।
और जब कभी मौसम उतार पर
होता था। हमारा संशय
हमें कोंचता था। हम उत्तेजित होकर
पूछते थे—यह क्या है ?
ऐसा क्यों है ?
फिर बहसें होती थीं
शब्दों के जंगल में
हम एक दूसरे को काटते थे
भाषा की खाई को
जुबान से कम और जूतों से
ज्यादा पाटते थे
कभी वह हारता रहा ·
कभी हम जीतते रहे ·
इसी तरह नोक-झोंक चलती रही
दिन बीतते रहे ··

मगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया
मेरा सारा धीरज
युद्ध की आग से पिघलती हुई बर्फ में
बह गया
मैंने देखा कि मैदानों में
नदियों की जगह
मरे हुए साँपों की केंचुलें बिछी हैं
पेड़—
टूटे हुए रेडार की तरह खड़े हैं
दूर-दूर तक
कोई मौसम नहीं है
लोग—
घरों के भीतर नंगे हो गये हैं
और बाहर मुर्दे पड़े हैं

विधवाएँ तमगा लूट रही हैं
सधवाएँ मंगल गा रही हैं
वन-महोत्सव से लौटी हुई कार्यप्रणालियाँ
अकाल का लंगर चला रही हैं
जगह-जगह तख्तियाँ लटक रही है—
'यह श्मशान है यहाँ की तसवीर लेना
सख्त मना है।'
फिर भी इस उजाड़ में
कहीं-कहीं घास का हरा होना
कितना डरावना है
मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का
सबसे बड़ा बौद्ध-मठ
बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है
अखबार के मटमैले हाशिये पर
लेटे हुए, एक तटस्थ और कोढ़ी देवता का
शान्तिवाद, नाम है
यह मेरा देश है ··
यह मेरा देश है
हिमालय से लेकर हिंद महासागर तक
फैला हुआ
जली हुई मिट्टी का ढेर है
जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब—
नफरत है।
साजिश है।
अंधेर है।
यह मेरा देश है
और यह मेरे देश की जनता है
जनता क्या है?
एक शब्द · सिर्फ एक शब्द है
कुहरा और कीचड़ और काँच से
बना हुआ ।
एक भेड़ है
जो दूसरों की ठंड के लिए
अपनी पीठ पर

ऊन की फसल हो रही है।
एक पेड़ है
जो ढलान पर
हर आती जाती हवा की जुबान में
हाँऽऽ हाँऽऽ करता है
क्योंकि अपनी हरियाली से
डरता है।
गाँवों के गंदे पनालों से लेकर
शहर के शिवालों तक फैली हुई
'कथाकलि' की एक अमूर्त मुद्रा है
यह जनता ।
जनतन्त्र में
उसकी श्रद्धा
अटूट है
उसको समझा दिया गया है कि यहाँ
ऐसा जनतन्त्र है जिसमें
जिन्दा रहने के लिए
घोड़े और घास को
एक जैसी छूट है
कैसी विडम्बना है
कैसा झूठ है
दरअसल, अपने यहाँ जनतन्त्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है

हर तरफ धुआँ है
हर तरफ कुहासा है
जो दाँतों और दलदलों का दलाल है
वही देशभक्त है
अंधकार में सुरक्षित होने का नाम है —
तटस्थता। यहाँ
कायरता के चेहरे पर
सबसे ज्यादा रक्त है।

जिसके पास थाली है
हर भूखा आदमी
उसके लिए, सबसे भद्दी —
गाली है

हर तरफ कुआँ है
हर तरफ खाई है
यहाँ, सिर्फ, वह आदमी, देश के करीब है
जो या तो मूर्ख है
या फिर गरीब है

मैं सोचता रहा,
और घूमता रहा—
टूटे हुए पुलों के नीचे
वीरान सड़कों पर। आँखों के
अंधे रेगिस्तानों में।
फटे हुए पालों की अधूरी जल-यात्राओं में
टूटी हुई चीजों के ढेर में
मैं खोई हुई आजादी का अर्थ
ढूँढता रहा।
अपनी पसलियों के नीचे। अस्पतालों के
बिस्तरों पर। नुमाइशों में
बाजारों में। गाँवों में
जंगलों में। पहाड़ों पर
देश के इस छोर से उस छोर तक
उसी लोक चेतना को
बार-बार टेरता रहा
जो मुझे दोबारा जी सके
जो मुझे शाँति दे और
मेरे भीतर बाहर का जहर
खुद पीस दे

—और तभी सुलग उठा पश्चिमी सीमान्त
ध्वस्त ध्वस्त · ध्वांत ध्वांत

मैं दोबारा चौंककर खड़ा हो गया
जो चेहरा आत्महीनता की स्वीकृति में
कंधे पर लुढ़क रहा था,
किसी झनझनाते हुए चाकू की तरह
खुलकर, खड़ा हो गया ।
अचानक, अपने-आप में जिन्दा होने की
यह घटना
इस देश की परम्परा थी —
एक बेमिसाल कड़ी थी
लेकिन इसे साहस मत कहो।
दरअसल, यह पुट्ठों तक चोट खाई हुई
गाय की घृणा थी
(जिन्दा रहने की पुरज़ोर कोशिश)
जो उस आदमखोर की हविस से
बनी थी।

मगर उसके तुरन्त बाद
मुझे झेलनी पड़ी थी – सबसे बड़ी ट्रैजेडी
अपने इतिहास की
जब दुनिया के स्याह और सफेद चेहरों ने
विस्मय से देखा कि ताशकन्द में
समझौते की सफेद चादर के नीचे
एक शान्ति-यात्री की लाश थी
और अब यह किसी पौराणिक कथा के
उपसंहार की तरह है कि इस देश में
रोशनी उन पहाड़ों से आई थी
जहाँ मेरे पड़ोसी ने मात
खाई थी

मगर फिर मैं वहीं चला गया
अपने जनून के अंधेरे में
फूहड़ इरादों के हाथों
छला गया।
वहाँ बंजर मैदान

सवालों की नुमायश कर रहे थे
गोदाम अनाज से भरे पड़े थे और लोग
भूखों मर रहे थे
मैंने महसूस किया कि मैं वक्त के
एक शर्मनाक दौर से गुजर रहा हूँ
अब ऐसा वक्त आ गया है जब कोई
किसी का झुलसा हुआ चेहरा नहीं देखता है
अब न तो कोई किसी का खाली पेट
देखता है, न थरथराती हुई टाँगें
और न ढला हुआ 'सूर्यहीन कंधा' देखता है
हर आदमी, सिर्फ, अपना धंधा देखता है
सबने भाईचारा भुला दिया है
आत्मा की सरलता को मारकर
मतलब के अंधेरे में (एक राष्ट्रीय मुहावरे की बगल में)
सुला दिया है।
सहानुभूति और प्यार
अब ऐसा छलावा है जिसके जरिये
एक आदमी दूसरे को, अकेले —
अंधेरे में ले जाता है और
उसकी पीठ में छुरा भोंक देता है
ठीक उस मोची की तरह जो चौक से
गुजरते हुए देहाती को
प्यार से बुलाता है और मरम्मत के काम पर
रबर के तल्ले में
लोहे की तीन दर्जन फुल्लियाँ
ठोंक देता है और उसके नहीं-नहीं के बावजूद
डपटकर पैसा वसूलता है
गरज यह कि अपराध
अपने यहाँ एक ऐसा सदाबहार फूल है
जो आत्मीयता की खाद पर
लाल भड़क फूलता है
मैंने देखा कि इस जनतांत्रिक जंगल में
हर तरफ हत्याओं के नीचे से निकलते हैं
हरे-हरे हाथ और पेड़ों पर

पत्तों की जुबान बनकर लटक जाते हैं
वे ऐसी भाषा बोलते हैं जिसे सुनकर
नागरिकता की गोधूलि में
घर लौटते हुए मुसाफिर
अपना रास्ता भटक जाते हैं

उन्होंने किसी चीज को
सही जगह नहीं रहने दिया है
न संज्ञा
न विशेषण
न सर्वनाम
एक समूचा और सही वाक्य
टूटकर
बि ख र गया है
उनका व्याकरण इस देश की
शिराओं में छिपे हुए कारकों का
हत्यारा है
उनकी सख्त पकड़ के नीचे
भूख से मरा हुआ आदमी
इस मौसम का
सबसे दिलचस्प विज्ञापन है और गाय
सबसे सटीक नारा है
वे खेतों में भूख और शहरों में
अफवाहों के पुलिंदे फेंकते हैं
देश और धर्म और नैतिकता की
दुहाई देकर
कुछ लोगों की सुविधा
दूसरों की 'हाय' पर सेंकते हैं
वे जिसकी पीठ ठोंकते हैं —
उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो जाती है
वे मुस्कराते हैं और
दूसरे की आँख में झपटती हुई प्रतिहिंसा
करवट बदलकर सो जाती है
मैं देखता रहा—

देखता रहा—
हर तरफ ऊब थी
संशय था
नफरत थी
मगर हर आदमी अपनी जरूरतों के आगे
असहाय था। उसमें
सारी चीजों को नये सिरे से बदलने की
बेचैनी थी, रोष था,
लेकिन उसका गुस्सा
एक तथ्यहीन मिश्रण था
आग और आँसू और हाय का।

इस तरह एक दिन—
जब मैं घूमते-घूमते थक चुका था
मेरे खून में एक काली आँधी —
दौड़ लगा रही थी
मेरी अकेले[illegible] साथ हुए
बहकी इरादों को
झकझोरकर जगा रही थी
अचानक, नींद की असंख्य पर्तों में
डूबते हुए मैंने देखा
कि मेरी उलझनों के अँधेरे में
एक हम-शक्ल खड़ा है
मैंने उससे पूछा —तुम कौन हो ?
यहाँ क्यों आए हो ?
तुम्हें क्या हुआ है ?
'तुमने पहचाना नहीं—मैं हिन्दुस्तान हूँ
हाँ—मैं हिन्दुस्तान हूँ'
वह हँसता है —ऐसी हँसी कि दिल
दहल जाता है
कलेजा मुँह को आता है
और मैं हैरान हूँ
'यहाँ आओ
मेरे पास आओ

मुझे छुओ।
मुझे जिओ। मेरे साथ चलो
मेरा यकीन करो। इस दलदल से
बाहर निकलो।
सुनो!
तुम चाहे जिसे चुनो
मगर इसे नहीं। इसे बदलो।'
मुझे लगा—आवाज
जैसे किसी जलते हुए कुएँ से
आ रही है
एक अजीब-सी प्यार भरी गुर्राहट
जैसे कोई मादा भेड़िया
अपने छौने को दूध पिला रही है और
साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है
मेरा सारा जिस्म थरथरा रहा था
उसकी आवाज में
असख्य नर्कों की घृणा भरी थी
वह एक-एक शब्द चबा-चबाकर
बोल रहा था। मगर उसकी आँख
गुस्से में भी हरी थी
वह कह रहा था—
'तुम्हारी आँखों के चकनाचूर आईनों में
वक्त की बदरंग छायाएँ उल्टी कर रही हैं
और तुम पेड़ों की छाल गिनकर
भविष्य का कार्यक्रम तैयार कर रहे हो
तुम एक ऐसी जिन्दगी से गुजर रहे हो
जिसमें न कोई तुक है
न सुख है
तुम अपनी शापित परछाईं से टकराकर
रास्ते में रुक गए हो
तुम जो हर चीज
अपने दाँतों के नीचे
खाने के आदी हो
चाहे वह सपना हो अथवा आजादी हो

अचानक, इस तरह, क्यों चुक गए हो
वह क्या है जिसने तुम्हें
बर्बरों के सामने अदब से
रहना सिखलाया है ?
क्या यह विश्वास की कमी है
जो तुम्हारी भलमनसाहत बन गई है
या कि शर्म
अब तुम्हारी सहूलियत बन गई है
नहीं—सरलता की तरफ इस तरह
मत दौड़ो
उसमें भूख और मंदिर की रोशनी का
रिश्ता है। वह बनिये की पूँजी का
आधार है
मैं बार-बार कहता हूँ कि इस उलझी हुई—
दुनिया में
आसानी से समझ में आनेवाली चीज
सिर्फ दीवार है।
और यह दीवार अब तुम्हारी आदत का
हिस्सा बन गई है
इसे झटक कर अलग करो
अपनी आदतों में
फूलों की जगह पत्थर भरो
मासूमियत के हर तकाजे को
ठोकर मार दो
अब वक्त आ गया है कि तुम उठो
और अपनी ऊब को आकार दो।

सुनो !
आज मैं तुम्हें सत्य बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है। इस दुनिया में
भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क
रोटी है
मगर तुम्हारी भूख और भाषा में

यदि सही दूरी नहीं है
तो तुम अपने-आपको आदमी मत कहो
क्योंकि पशुता —
सिर्फ पूँछ होने की मजबूरी नहीं है
वह आदमी को भी वहीं ले जाती है
जहाँ भूख
सबसे पहले भाषा को खाती है
वक्त सिर्फ उसका चेहरा बिगाड़ता है
जो अपने चेहरे की राख
दूसरों की रुमाल से झाड़ता है
जो अपना हाथ
मैला होने से डरता है
वह एक नहीं ग्यारह कायरों की
मौत मरता है
और सुनो ! नफ़रत और रोशनी
सिर्फ उसके हिस्से की चीज़ है
जिसे जंगल के हाशिये पर
जीने की तमीज़ है
इसलिए उठो और अपने भीतर
सोए हुए जंगल को
आवाज़ दो
उसे जगाओ और देखो—
कि तुम अकेले नहीं हो
और न किसी के मुहताज हो
लाखों हैं जो तुम्हारे इंतज़ार में खड़े हैं
वहाँ चलो। उनका साथ दो
और इस तिलस्म का जादू उतारने में
उनकी मदद करो और साबित करो
कि ये सारी चीज़ें अंधी हो गई हैं।
जिनमें तुम शरीक नहीं हो ।
मैं पूरी तत्परता से उसे सुन रहा था

एक के बाद दूसरा
दूसरे के बाद तीसरा

तीसरे के बाद चौथा
चौथे के बाद पाँचवाँ…
यानी कि एक के बाद दूसरा विकल्प
चुन रहा था
मगर मैं हिचक रहा था
क्योंकि मेरे पास
कुल जमा थोड़ी सुविधाएँ थीं
जो मेरी सीमाएँ थीं
यद्यपि यह सही है कि मैं
कोई ठंडा आदमी नहीं हूँ
मुझ में भी आग—है
मगर वह
भभककर बाहर नहीं आती
क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआ
एक 'पूँजीवादी' दिमाग है
जो परिवर्तन तो चाहता है
मगर आहिस्ता-आहिस्ता
कुछ इस तरह कि चीज़ों की शालीनता
बनी रहे।
कुछ इस तरह कि काँख भी ढँकी रहे
और विरोध में उठे हुए हाथ की
मुट्ठी भी तनी रहे ।
और यही वजह है कि बात
फैसले की हद तक
आते-आते रुक जाती है
क्योंकि हर बार
चन्द टुच्ची सुविधाओं की लालच के सामने
अभियोग की भाषा चुक जाती है

मैं खुद को कुरेद रहा था
अपने बहाने उन तमाम लोगों की असफलताओं को
सोच रहा था जो मेरे नज़दीक थे ।
इस तरह साबुत और सीधे विचारों पर

खरोंच रहा था, नोच रहा था
पूरे समाज की सीवन उधेड़ते हुए
मैंने आदमी के भीतर की मैल
देख ली थी। मेरा सिर
भिन्ना रहा था
मेरा हृदय भारी था
मेरा शरीर इस बुरी तरह थका था कि मैं
अपनी तरफ घूरते हुए उस चेहरे से
थोड़ी देर के लिए
बचना चाह रहा था
जो अपनी पैनी आँखों से
मेरी बेबसी और मेरा उथलापन
थाह रहा था
प्रस्तावित भीड़ में
शरीक होने के लिए
अभी मैंने कोई निर्णय नहीं लिया था
अचानक, उसने मेरा हाथ पकड़कर
खींच लिया और मैं
जेब में जूता का टोकन और दिमाग में
ताज़े अखबार की कतरन लिए हुए
धड़ाम से —
चौथे आम चुनाव की सीढ़ियों से फिसलकर
मत-पेटियों के

गड़गच्च अँधेरे में गिर पड़ा
नींद के भीतर यह दूसरी नींद है
और मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है
सिर्फ एक शोर है
जिसमें कानों के पर्दे फटे जा रहे हैं
शासन सुरक्षा रोज़गार शिक्षा
राष्ट्रधर्म देशहित हिंसा अहिंसा
सैन्यशक्ति देशभक्ति आज़ादी वीसा
वाद बिरादरी भूख भीख भाषा
शांति क्रांति, शीतयुद्ध एटम बम सीमा

एकता सीढ़ियाँ साहित्यिक पीढ़ियाँ निराशा ···
झाँय-झाँय, खाँय-खाँय, हाय-हाय, साँय-साँय ·

मैंने कानों में ठूस ली हैं अँगुलियाँ
और अँधेरे में गाड दी है
आँखो की रोशनी।
सब-कुछ अब धीरे-धीरे खुलने लगा है
मत-वर्षा के इस दादुर शोर में
मैंने देखा हर तरफ
रंग-बिरंगे झंडे फहरा रहे हैं
गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए
गुट से गुट टकरा रहे हैं
वे एक-दूसरे से दाँता-किलकिल कर रहे हैं
एक दूसरे को दुर-दुर बिल-बिल कर रहे हैं
हर तरफ तरह-तरह के जन्तु हैं
श्रीमान् किन्तु हैं
मिस्टर परन्तु हैं
कुछ रोगी हैं
कुछ भोगी हैं
कुछ हिजड़े हैं
कुछ जोगी हैं
तिजोरियों के
प्रशिक्षित दलाल हैं
आँखो के अंधे हैं
घर के कंगाल हैं
गूंगे हैं
बहरे हैं
उथले हैं, गहरे हैं
गिरते हुए लोग हैं
अकड़ते हुए लोग हैं
भागते हुए लोग हैं
पकड़ते हुए लोग हैं
गरज यह कि हर तरह के लोग हैं
एक-दूसरे से नफरत करते हुए व

इस बात पर सहमत हैं कि इस देश मे
असख्य रोग हैं
और उनका एकमात्र इलाज—
चुनाव है।
लेकिन मुझे लगा कि एक विशाल दलदल के किनारे
बहुत बडा अधमरा पशु पडा हुआ है
उसकी नाभि मे एक सडा हुआ घाव है
जिससे लगातार—भयानक बदबूदार मवाद
बह रहा है
उसमे जाति और धर्म और सम्प्रदाय और
पेशा और पूजी के असख्य कीडे
किलबिला रहे हैं और अन्धकार मे
डूबी हुई पृथ्वी
(पता नही किस अनहोनी की प्रतीक्षा मे)
इस भीषण सडाँध को चुपचाप सह रही है
मगर आपस में नफरत करते हुए वे लोग
इस बात पर सहमत हैं कि
'चुनाव' ही सही इलाज है
क्योकि बुरे और बुरे के बीच से
किसी हद तक 'कम-से-कम बुरे को' चुनते हुए
न उन्हे मलाल है, न भय है
न लाज है
दरअस्ल, उन्हे एक मौका मिला है
और इसी बहाने
वे अपने पडोसी को पराजित कर रहे हैं
मैंने देखा कि हर तरफ
मूढता की हरी-हरी घास लहरा रही है
जिसे कुछ जगली पशु
खूंद रहे हैं
लीद रहे हैं
चर रहे हैं

मैंने ऊब और गुस्से को
गलत मुहरो के नीचे से गुजरते हुए देखा

152. कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

मैंने अहिंसा को
एक सत्तारूढ़ शब्द का गला काटते हुए देखा
मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेबें
भरते हुए देखा
मैंने विवेक को
चापलूसों के तलवे चाटते हुए देखा ...।

मैं यह सब देख ही रहा था एक नया रेला आया।
उन्मत्त लोगों का बर्बर जलूस। वे किसी आदमी
को हाथों पर गठरी की तरह उछाल रहे थे
उसे एक दूसरे से छीन रहे थे। उसे घसीट रहे थे।
चूम रहे थे। पीट रहे थे। गालियाँ दे रहे थे।
गले से लगा रहे थे। उसकी प्रशंसा के गीत
गा रहे थे। उस पर अनगिनत झंडे फहरा रहे थे।
उसकी जीभ बाहर लटक रही थी। उसकी आँखें बन्द
थीं। उसका चेहरा खून और आँसू से तर था। 'मूर्खो!
यह क्या कर रहे हो।' मैं चिल्लाया। और तभी किसी
ने उसे मेरी ओर उछाल दिया। अरे! यह कैसे हुआ?
मैं हतप्रभ-सा खड़ा था
और मेरा हमशक्ल
मेरे पैरों के पास
मूर्च्छित सा
पड़ा था

दुख और भय से एक झुरझुरी लेकर
मैं उस पर झुक गया
किन्तु बीच ही में रुक गया
उसका हाथ ऊपर उठा था
खून और आँसू से तर चेहरा
मुस्कुराया था। उसकी आँखों का हरापन
उसकी आवाज में उतर आया था—
'दुखी मत हो। यही मेरी नियति है।
मैं हिन्दुस्तान हूँ। जब भी मैंने
उन्हें उजाले से जोड़ा है

उन्होंने मुझे इसी तरह अपमानित किया है।
इसी तरह तोड़ा है।
मगर समय गवाह है
कि मेरी बेचैनी के आगे भी राह है'

मैंने सुना। वह आहिस्ता-आहिस्ता कह रहा है
जैसे किसी जले हुए जंगल में
पानी का एक ठंडा सोता बह रहा है
घास की ताजगी-भरी
ऐसी आवाज है
जो न किसी से खुश है, न नाराज है।
'भूख ने उन्हें जानवर कर दिया है
संशय ने उन्हें आग्रहों से भर दिया है
फिर भी वे अपने हैं
अपने हैं
अपने हैं
जीवित भविष्य के सुन्दरतम सपने हैं
नहीं—यह मेरे लिए दुखी होने का समय
नहीं है। अपने लोगों की घृणा के
इस महोत्सव में
मैं शापित निश्चय हूँ
मुझे किसी से भय नहीं है।

तुम मेरी चिन्ता मत करो। उनके साथ
चलो। इससे पहले कि वे
गलत हाथों के हथियार हों
इससे पहले कि वे नारों और इश्तिहारों से
काने बाजार हों
उनसे मिलो। उन्हें बदलो।
नहीं—भीड़ के खिलाफ रुकना
एक खूनी विचार है
क्योंकि हर ठहरा हुआ आदमी
इस हिंसक भीड़ का
अधा शिकार है।

मन्त्री जब प्रजा के सामने आता है
तो पहले से
कुछ ज्यादा मुस्कराता है
नये-नये वादे करता है
और यह सब सिर्फ घास के
सामने होने की मजबूरी है
वर्ना उस भलेमानुस को
यह भी पता नहीं है कि विधान सभा भवन
और अपने निजी बिस्तर के बीच
कितने जूतों की दूरी है।

हाँ, यह सही है कि इन दिनों चीजों के
भाव कुछ चढ़ गये हैं। अखबारों के
शीर्षक दिलचस्प हैं, नये हैं।
मंदी की मार से
पट पड़ी हुई चीजें, बाजार में
सहसा उछल गई हैं
हाँ, यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ टोपियाँ बदल गई हैं
और—
सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल-उछलकर
अपनी जगहें बदल रहे हैं
चढ़ी हुई नदी में
भरी हुई नाव में
हर तरफ विरोधी विचारों का
दलदल है
सतहों पर हलचल है
नये नये नारे हैं
भाषण में जोश है
पानी ही पानी है
पर
की
च
ड़

खामोश है

मैं रोज़ देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का
एक पुर्ज़ा गरम होकर
अलग छिटक गया है और
ठंडा होते ही
फिर कुर्सी से चिपक गया है
उसमें न हया है
न दया है

नहीं—अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है। मैंने एक-एक को
परख लिया है।
मैंने हरेक को आवाज़ दी है
हरेक का दरवाज़ा खटखटाया है
मगर बेकार… मैंने जिसकी पूँछ
उठाई है उसको मादा
पाया है
वे सबके सब तिजोरियों के
दुभाषिये हैं।
वे वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानि कि—
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।

भूख और भूख की आड़ में
चबाई गई चीज़ों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूँढना
बेकार है। समाजवाद
उनकी ज़ुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद

मालगोदाम मे लटकती हुई
उन बाल्टियो की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है
और उनमे बालू और पानी भरा है ।

यहाँ जनता एक गाडी है

एक ही सविधान के नीचे
भूख से रिरियाती हुई फैली हथेली का नाम
'दया' है
और भूख मे
तनी हुई मुट्ठी का नाम
नक्सलबाडी है

मुझसे कहा गया कि ससद
देश की धडकन को
प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण है
जनता को
जनता के विचारो का
नैतिक समर्पण है
लेकिन क्या यह सच है ?
या यह सच है कि
अपने यहाँ ससद—
तेली की वह घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है
और यदि यह सच नही है
तो वहाँ एक ईमानदार आदमी को
अपनी ईमानदारी का
मलाल क्यो है ?
जिसने सत्य कह दिया है
उसका बुरा हाल क्यो है ?

मैं अक्सर अपने आपसे सवाल
करता हूँ जिसका मेरे पास

कोई उत्तर नहीं है
और आज तक —
नींद और नींद के बीच का जंगल काटते हुए
मैंने कई रातें जागकर
गुज़ार दी हैं
हफ़्तों पर हफ़्ते तय किए हैं। अब मैं
निर्मम अकेले और बेहद अनमने क्षण
जिये हैं।
मेरे सामने वही चिरपरिचित अन्धकार है
समय की अनिश्चयग्रस्त ठंडी गुफाएँ हैं
हर तरफ़
शब्दरोधी सन्नाटा है।
दृष्टि की व्यथा की तरह
उचाट और धुँधला हुआ। घृणा से
डूबा हुआ सारा का सारा देश
पहले की तरह आज भी
मेरा कारागार है।

आज या कल या सौ वरस वाद

[आगे भी क्या यही होगा
कि छोटे आदमी की तस्वीर
और भी छोटी होती चली जायेगी
और चौखटा
चिटकता रहेगा
उसकी बढ़ती हुई खामोशी के आतंक से ?]

आज या कल या सौ बरस बाद

जब तक
इतिहास
ऐसे ही लिखा जाता रहेगा
जब तक आदमी
उनके तलवों की रंगत बखानता रहेगा
जो तब भी राजा थे
और अब भी राजा हैं।

झुर्रियों में पड़ी हुई कहानियाँ
वक्त की
वहीं रुक गयी
काले घोड़े का सवार
और उड़ती हुई पताका
मैली पगड़ी की लपेट में खो गये।

जब तक चर्चा होती रहेगी
उनकी
जो बड़े युद्धों के नायक होकर भी लड़ाई में जिन्दा रहे
और अपना आदमी
इस तरह गिना जाता रहा :
'दस हज़ार
बीस हज़ार या तीस हज़ार

काम आये'

अब आदमी को ईश्वर नहीं गढता
अपनी शक्ल मे
या ईश्वर ही गढता है
दूसरी शक्ल में।

चौराहों पर
लगी हुई मूर्तियाँ
ज्यादातर उन्ही की हैं
जिन्होंने कोई लडाई नही
तमगा जीता था।

धरती की खामोशी में
उलटी पडी
छोटे आदमी की तस्वीर
सीधी होते वक्त और भी खामोश नजर आयी।

आगे भी क्या यही होगा ?

राजधानी के किनारे
उडती हुई गर्द
ऊँटों के शरीर की तरह बडी होती रहेगी
और रेगिस्तान
अपनी निरक्षरता को
पूरे देश की जडो मे डालेगा ?

आगे भी क्या यही होगा
कि छोटे आदमी की तस्वीर
और भी छोटी होती चली जायेगी
और चौखटा
चिटकता रहेगा
उसकी बढती हुई खामोशी के आतक से ?

अपने ही देश में
पीछे लौटते हुए
मुझे वे लोग याद आते हैं
जो राजा भी थे और फकीर भी
और उनका एक हाथ तब भी मिट्टी पर होता था
जब वे पानी या आग पर चलते थे।

राजाओं की शक्लों में
फकीरों के नक्श गलते चले गये
और इतिहास सोने से पानी में लिखा जाने लगा
धीरे-धीरे ये सब बातें पुराण हो गयीं
और पुराण
कपोल कल्पना।

अब आदमी की चमड़ी का
जूता पहनने वाले लोग राजा हैं।
बहरहाल जूतों का व्यापार बढ़ रहा है
आदमी मारा नहीं जा रहा
अपनी चमड़ी के नीचे
खुद ही मर रहा है।

अपने ही देश में या
दुनिया में
पीछे लौटते हुए या
आगे बढ़ते हुए—
मुझे एक चीज़ और याद भी आती है
वह मटमैली किताब
जिसे आदमी ने
आदमी के लिये नहीं लिखा था

पर मटमैली किताब
जिसके भीगे हुए पन्नों पर
करोड़ों लोगों की भूख के गड्ढे थे

166 . कही भी खत्म कविता नही होती

मिट्टी के पास बैठा हुआ आदमी
उस किताब के साथ ही दफनाया जाता रहा
वीरान सुनसानो मे
और कारनामे
सुनहरे अक्षरो मे
सुरक्षित होते रहे ।

लेकिन पृथिवी अन्दर भी चलती है
मीलो नीचे
अपनी ही कोख के अन्दर
और न्याय हर बार ऊपर ही नही होता
मिट्टी की निर्ममता
बहुत कुछ खाती है
वे कीडे भी
जिन्हे बडा आदमी पालता है
मटमैली किताब का इतिहास खाने के लिये

कही भी तो कुछ नही है ऐसा

कही भी तो कुछ नही है ऐसा
जो बत्तियो को साबुत रख सके
बारिश मे दब गयी
बस्तियो के ऊपर
आधी रात ।

सुबह होने पर भी रोशनी नही होगी

सुबह होने पर भी रोशनी नही होगी
उनके घरो और आसमान के बीच एक पूरी दुनिया है
हर रोज कुछ और बडी होती हुई ।

इमारतो को बनानेवाले
उनके खुरदरे हाथ

और भी खुरदरे होते रहे ।
उन्होंने सिर्फ़ काम के घंटे गिने थे
रोटी खरीदते वक्त
अपने घर की वह धूप नहीं
जिसे उन्होंने
इमारतों की जड़ों में रखा था ।

वे सिर्फ़ रोटी माँगते हैं या कपड़ा
या तीज-त्योहारों के लिए कुछ—
—कुछ ऐसा
जिससे बीवी बच्चे पूरे साल
उनके अपने छप्पर के नीचे रह सकें
उन्होंने रोशनी के पैसे नहीं माँगे
जिसे उन्होंने श्रम के साथ-साथ बेचा था

कहीं भी तो कुछ नहीं है ऐसा
जो बड़े घरों की रोशनियों को
बेनकाब कर दे
कांच से बाहर—
आग जो जलती रहे, जमती रहे
निर्मम ऊँचाइयों को राख करती हुई
उनके खुरदरे हाथों के करीब ।

घड़ों के पास बैठी वह धूप
भी तो निर्ममता से
उन इमारतों में ही ऊँची होकर फैलती चली गयी
और वे देखते रहे ।

पर कहीं कुछ है ऐसा
कहीं कोई
जो अपने माथे पर बँधा
पुराना कपड़ा खोल रहा ।
मिट्टी और सूरज को
साथ-साथ तोल रहा है ।

उसे मैं क्या दूंगी
उस आदमी के खुले माथे को ?
उसके पुराने कपड़े को
मुट्ठी में भींचते वक्त
लहूलुहान हुई हथेली या
हथेली का आशीर्वाद—

उस आदमी को क्या दूँगी
जिसके साथ
मैं अजनबी की तरह
बरसों से या
शुरू से ही चलती रही ?

माथे का कपड़ा खुलते ही
मैं उसके करीब हो गयी थी।
इतने करीब
कि वह
एक हाथ में मिट्टी और सूरज
और दूसरे हाथ में
मिले हुए चन्द सिक्कों को लेकर
चौराहे पर खड़ा हो गया था
और हँसती हुई भीड़
अचानक सजीदा होती चली गयी थी।

मैं उसे क्या दूंगी
लहूलुहान हथेली
जिसे वह सूर्यमुखी की तरह
अपने माथे पर बांधेगा या
नगर-बाहर का छूटा हुआ अंधकार
जिसे चौराहे पर लाते ही
वह मार दिया जायेगा
वह आदमी
जिसके आस-पास बड़ी हो रही भीड़
अब बलने लगी है

उन चन्द सिक्कों के खिलाफ़

वे उनके रक्त के ढेर को जमा कर
एक प्रतिमा बनायेंगे
वे खरीदार लोग, फिर
उस लाल पत्थर की आग पर
धीरे धीरे अपने तहखानों का
काला पानी सींच देंगे।

एक के बाद एक
ज़िबह होता चला जायेगा आदमी
चौराहे पर खड़ा होनेवाला हर आदमी
जिसके साथ मैं
बरसों से या
शुरू से ही
अजनबी की तरह चलती रही।

और माथे के धुले हुए पुराने कपड़े से
मेरी हथेली
लहूलुहान होती रहेगी
एक के बाद एक
मेरी सारी ही हथेलियाँ।

मैं उसे क्या दूँगी
उसके सूखे माथे को
सुर्खरुई का आशीर्वाद
या
वह रंग
जो लाल पत्थर की आग पर
किसी भी पानी को चढ़ने नहीं देता
कोरे [illegible] मेहंदी का धीरे
किसी भी पानी को
मैं उसे क्या दूँगी
अपने साथ

170 . कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

बार बार जिबह होती हुई ?

बर्तन मांजते हुए
उसने अपनी उम्र बतायी थी
'यही होगी कोई दस, बारह या
पन्द्रह साल' ।

आकाश विद्या जाननेवाला यह देश
भी नही जानता
उसकी उम्र
जो गोद से निकलते ही
सडको पर आया था
और तबसे
धूप और छाया मे
समय का अन्दाज करते हुए
सडक के किनारे चल रहा है।

उसके लिये
सुबह सिर्फ सुबह होती है
और शाम सिर्फ शाम ही
वह दिनो को महीने में
और महीनो को साल में
कैसे जोडे
जबकि आज और कल और परसो
हमशक्ल हैं उसके लिये
सुई दर सुई एक चाल में चलते हुए।
वह यह भी कह देता
'साठ साल'
तो भी क्या फर्क पडता
आकाशविद्या जाननेवाले इस देश को
जो सिर्फ उनकी उम्र जानता है
जो अभी तक भारतमाता की गोद मे चढ़े हैं
कंधे तक उठे हुए

और हर साल
साठ या सत्तर या अस्सी या
नब्बे मोमबत्तियें बुझाते हैं
विलायती मिठाई पर।

तारीखें 'चीयर्स' के साथ ही बदलती हैं
उठे हुए गिलासों के बीच।

चाय की काली भाप में
फिसलती हुई ठंड
बार बार जम जाती है वहां
उसके मैले कपड़ों के करीब
उसकी उंगलियों के सुन्न नीलेपन में—
नहीं
और भी आगे
उसकी सुबहों के करीब
उसकी रातों के करीब
जब तारीख बदलने का समय होता है।

उसके चले जाने के बाद
उसकी आंखों की
छूटी हुई चमक से
मैं उसका जन्मदिन ढूंढती हूं
सुबह और शाम का वह क्षण
जब दिन को कोई नाम दिया जाता है।
उसके लिये
कैलेण्डर बनाने की सारी योजनाओं के बावजूद
वे सभी तारीखें हाथ से निकल गयीं
जिन पर मैंने लाल स्याही से
किसी न किसी त्यौहार का निशान बनाया था।

वक्त में बदलती हुई छाया
उन तारीखों की
और उसकी आंखों के करीब

उठता हुआ शोर
सब धीरे धीरे बैठ गये।

दिन यो ही फाड़े जाते रहे
एक के बाद एक
और लाल तारीखों पर
अपनी फटी एड़ियों के काले निशान रखता
वह चलता रहा
धूप में दरक गयी
सड़क के साथ सा।

पता नहीं
कब बड़ा होगा आदमी
पता नहीं कब
सचमुच ही
बड़ा होगा आदमी ?

इंच दर इंच
नीचे आ रहे हैं दिन
पहाड़ों के कंधों से
इंच दर इंच
पानी बर्फ बन रहा है
घर अन्दर होते जा रहे हैं।

पता नहीं कब
बड़े होकर जलेंगे चूल्हे
पता नहीं कब
सचमुच ही
बड़े होकर जलेंगे चूल्हे

अंधेरे की आंच से
अब रोटियाँ नहीं सिकतीं
अंधेरे की आँच से
अब तम्बाकू नहीं महकता

यह ध्यान सिर्फ एक क्षण को ही आता है
कभी हम भी भूखे थे
या अब वे भूखे हैं—
भूख से आदमी मर भी जाता है।

मर भी जाता है ?
हाँ, मर भी जाता है
उस सबसे बड़ी भूख से
जो पेट में लगती है
और आँखों से निकलती है
हाँ, उस भूख से आदमी मर भी जाता है।

फिर क्या होगा ?
कल फिर क्या होगा
नाचघर या चायघर या शराबघर में ?
कम दर कम
छोटा होता चला जायेगा आदमी
हँसता हुआ पीता हुआ बहकता हुआ।

और परसों ?
परसों और भी छोटा होगा आदमी
पत्थरों वाली इमारत में बैठकर
दलीलें देता हुआ
'भूख से नहीं, वे
रक्त की कमी से मरे हैं।'

पता नहीं
कब बड़े होंगे इनसान
पता नहीं कब
सचमुच ही
बड़े होंगे इनसान

और यह चौराहा
जो [illegible]

पता नही कब लौटेगा
पता नही कब लौटेगा
उनके साथ
जो सचमुच ही बड़े हो रहे हैं
और गिरे हुए लोगो को
छोटे ही सही, लेकिन
उनके पैर दे रहे हैं ।

आकाश अब नीचे नही झुकता
न तो उस आदमी के सिर पर
जो अपने अन्दर ही
बहुत दूर चला गया
न उस आदमी के करीब
जो अपने से बाहर खड़ा है ।

आकाश की धूप अब कीड़े नही खाती
आकाश की धूप अब कीच नही सुखाती
और न तो सुबह के वक्त ही
रात की मैली चादर धोती है ।

कीड़े बड़े होते जा रहे हैं
और दलदलें गहरी
अंधेरे का पता नही,
कब अन्त होगा ?

वे सब धीरे-धीरे अभ्यस्त हो गए
कीड़ो के
कीच के
अन्धकार के
यहाँ तक कि उनकी मौत के भी
जिनके बालो से अभी तक
माँ के जिस्म की गंध आती है ।

अब फ़र्क सिर्फ़ बुझे हुए चूल्हों से पड़ता है
या अन्दर जलने वाली आग से ।
लड़ाई इन दोनों के बीच है
इन दो आगों के बीच
जो बाहर जलती नहीं
और अन्दर बुझती नहीं ।

इस छोटे से युद्ध की योजना
उन्होंने नहीं बनायी
जिन्हें लड़ना पड़ रहा है
और इसमें जीत हार कुछ नहीं होती
बस लड़ने वाला आदमी बुझता रहता है
और रोशनी एक तरफ इकट्ठी होती रहती है ।

इस सबकी लड़ाई को
मैं कौन सा शस्त्र दूं
जो इसका पैंतरा बदल दे
और इसके सीधे कदमों को
टेढ़ा काम कर दे ।

शतरंज के ये बड़े मोहरे
अपनी जगह से हिलने तक नहीं
उस आखिरी दाँव तक
जब तक कि सब रास्ते साफ़ नहीं हो जाते ।
यह दो बादशाहों या
दो वज़ीरों या दो हाथी-घोड़ों-ऊँटों
की लड़ाई भी नहीं है
जिसमें पैदल मर रहे हैं—
अँधेरी छतों के नीचे
घरों के भीतर
जो रोशनी में आते ही
जिन्दगी की तरह दीखने लगे थे ।

पत्थरों वाली इमारत में बैठा हुआ आदमी
और राजपथ
क्यों अब तक सुरक्षित है ?

वे अब तक नहीं लौटे
वे सचमुच ही बड़े लोग
जिन्होंने अपने कटे हुए
हाथों की झालर से
मुझे नगा होने से बचाया था ।
और अपने कटे हुए सिरों की माला से
मेरे वक्ष को सजाया था
वे अभी तक नहीं लौटे
जबकि मैं उनके हाथ लौटा चुकी हूँ
और कटे हुए सिर भी ।

मेरे नग्न होते ही
काल नगा हो गया
निराभरण, क्रूर'

और पानी वाले हर हिस्से में आग
बढ़ रही है
कृपाण की तरह तेज, फुर्तीली आग ।

उनके लिए
मैं अपने सब हाथों को जोड़ूँगी—
मेरे ये दो हाथ
जो खाने पहनने का काम करते हैं—
इनके अलावा अपने सब हाथों को
और अपने उन चेहरों को भी
जो देवालय से बाहर होते ही
मेरे एक चेहरे में घस गए थे ।

इस बार लड़ाई

मन्दिर से नहीं
सड़क पर होगी
मेरे उस स्वभाव के साथ ही
जो देवालय से बाहर होते ही
कालचक्र की कीलों में
बिंध गया था

इस बार
वह भी आहत हो सकता है
जो बहुत पहले
मेरे केशों को छूने की कोशिश करने वाले शत्रु के प्रति
अग्निपुंज बन गया था

यह इतना छोटा युद्ध
बुझे हुए चूल्हों
और जलते हुए पेटों का ।

इसके बाद और बहुत से युद्ध
आदमी की ऊँचाई के लिए
मुझे लड़ने हैं
बहुत से बड़े युद्ध
सड़क से मंदिर तक
आदमी से ईश्वर तक ।

उपनगर में वापसी

बलदेव वंशी

जन्म : 1938, मुलतान (पश्चिमी पाकिस्तान)

कृतियाँ :

कविता-संग्रह [illegible] (1970), उपनगर में वापसी (1974)
अंधेरे के बावजूद (197[illegible])
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] 2941 13 [illegible] नई दिल्ली
[illegible] उपनगर में वापसी (1974) [illegible]
[illegible] है।

उपनगर में वापसी

चलते चलते
'तुम कहाँ हो ?'
—किसी ने पूछा
बिना उत्तर दिए मैं अपने पीछे छिप गया
उसके सामने एक अधेड़ युवक का लटका हुआ चेहरा था
जो धीमी स्लाइडी-फिल्म की तरह जल-बुझ रहा था
मैं अपने भीतर था (भी)
और नहीं (भी)

उसने गहराई से देखा
घृणा से मुँह सिकोड़ा और कहा—
'आदमी अपने पीछे छिप मुर्दा हो गया है'
—लगा कि उसने सोते-जगते में किसी का नाम बुदबुदाया है
मैंने चेहरे [redacted] पोस्टर उतारकर सामने रख दिया
उसने उत्सुकता दिखाई
पैनी आँखों से मैं था
पोस्टर था और सामने रखी
गन्ध की पुड़िया

वह हँसा !
उसकी हँसी का रहस्य
कहीं विशेषता था, कहीं अन्तरंगता

कहीं वियतनाम और कहीं भारत
दरअसल वह हँसी पहले जमती हुई मोम मे बदल गई
फिर धीरे-धीरे पुराने पलस्तर की तरह भुरभुराने लगी
फिर मात्र श्रमहीनता का एहसास

शोर की घनी परतों पर यह जो
गर्म लकीरों से लिखा है चौराहों पर—
'अपने बायें चलो'
यह आदमी के निकट पडता है उबलती नदी का सहवर्ती भाग
किन्तु अफसोस है
आदमी सही नारा भी नही हुआ
अब किसी को नही लगती
कविता से चोट
या बद्दुआ
हवा मे पैवद हो गयी है चीख
ठड ने सबको अकेला कर दिया है यहाँ कितना !
कितना !!

वह पक्की सडक है
जनपथ
जो सीधे चलकर
अब बायें मुडी है
यही एक बच्चे के हाथो
ऋतुएँ खो गयी थी
तब से भयभीत वह
घर ही नही लौटा
किताबें अलग फेंक
कामकाजी हो गया

यह उपनगर 1950 मे बसा । बसाया गया था । है । होगा ।
यही पुराना रेलवे फाटक है   आगे स्टेशन
जब देखो ट्रैफिक बद
और प्रतीक्षा मे काँटा झुका है
किसी चलती फिल्म का घिसा हिस्सा

कस्बे में रुका है
आगे दायीं ओर यह पहला घुमाव है
यहीं एक कुआँ था
अब !
नहीं है !
कुएँ के पास पीने के पानी की टंकी थी
भरने झगड़ने लोगों की कतारें थीं
अब !
पानी के साथ
लड़ाइयाँ
घर-घर में बँट गयी हैं
इन इक्कीस वर्षों में
बिलकुल बदल गया है यहाँ का इतिहास
—कहाँ गयी भूमि को परगार करने वाली
गगन पर देखती आँखें ?
धरती की पसलियाँ छीनते बुलडोज़र
मज़दूरों के झूमते समूह
धूल उड़ाती बीड़ी बेचने वाली गाड़ियाँ
बरसात के गाने ··

अब मद्धिम रोशनियों में चलना
धीरे-धीरे बढ़ना
सपने में खोया हुआ उपनगर
'पूरा नगर हो रहा है, पण्डा'
—यहीं 'सीकर',
यहीं बैंक—बड़े रेस्त्राँ
बड़े शिकारियों की भीड़
मशहूर
रंगों—रूपों—उपेक्षाओं में एकाकार होते
पहर : दिनों की भिन्नता—
सिर के नीचे
अस्पृश्य
कमरा में
दूर [illegible]

इसी ब्लाक को ले लो
यहाँ जसवन्तू गले में फदा डाल झूल गया था भरी दोपहरी
बाप अभी दुकान पर बैठा है हर समय मोमबत्तियाँ जलाये
हर मौसम मे पखा डुलाता पाखाने मे प्राय चिल्लाते हुए कांखता
हुलहुलाता खोखल अब गिरा !
अब गिरा !

उसके द्वार पर गुलमुहर फूला है डहडहा !
हहहा !
किन्तु उसके पास अब कोई रग चलकर नही आता
—मौसम के साथ समय भी मर गया है देहरी पर
यही नगर की आधारशिला है
जिसके निकट अब भी
नेहरु युग का पागल गठरी-सा पडा है
योजनाओ के धमाके से उसी का
सतुलन उडा है
उसके निकट पडे हैं
बिजली के तार
पिछले अधड मे उडी
मकानो की सीमेंटी चद्दरो की छतें

पूरे उपनगर मे वही एक स्वतत्र है
हवा की तरह
बे-मतलब घूमता पागल
जब देखो यहाँ
वहाँ
कुछ बो रहा है
नुमायशी रगो की तरह सूखता है
धीरे
धीरे
सिकुडती हैं नसें
और फिर देखते-देखते
कुछ ठोस सग / मर / मर हो रहा है
आस-पास

पत्ता होकर
गिर
रहा
है
नीचे

कभी यह भूख की तरह
हँसकर
सफ़ेदी की तरह
गंभीर हो जाता है
अब, जबकि सभी पर्याय बिखर गये हैं
पागल नागरिक की कोटि में आता है
उसके जिस्म पर
लाल और सफ़ेद चींटियाँ
रेंग रही हैं एक साथ
क्या नागरिक होना
यों निरीह होना है ?
बाबू, टाँग या शरीर का कोई हिस्सा खोकर हँसना
हकलाना
या सोना है ?

कोई भी नगर ऐसा नहीं होता
और जब भीतर आग लगी हो
चुपचाप नहीं सोना !

आज ऐसा सम्भव है कहीं ?
—'बाबू ! इसका मतलब [illegible] ही ठीक है !
तुम, [illegible] मर गये हो।'
—'मैं बहस में नहीं पड़ता'
मुझे जाने दो
तुम्हारा जो मन करे, करो
यही और पुराना है
अब [illegible] और [illegible] के बीच [illegible] [illegible] है
[illegible]

188 . कही भी खत्म कविता नही होती

कठपुतली का नाच कभी देखा है ?
मरना उतना ही झूठ हो गया है
अब हँसी न आए तो
बगलो मे मेढक दबाकर हँसो
और गाना हो तो
कुहनी के नीचे गाय तकिया

यहाँ एक बिना बाहो का लडका था । अब
जवान है—भगतू कुबडा
पसलियो मे समा गए हैं कधे
और पीठ पर उभर आयी है हड्डियो की गाँठ
पैरो से रोटी पकडने की वजह से
अधिक मुडा है बरसातो मे
टीन की छतो-सा बजा है
और गर्मियो मे
भूसे-सा दूर-दूर तक उडा है
इस समय वह धुआँधार भाषणो म
कॉमा-सा व्यर्थ है
किसी बम-काड मे झुलसे गिलगिले चेहरे सा वह उभरता है
थरथराहट के बाद
थोडी देर काँप कर
किसी जोहड मे डूबता है
इस नगर के एक ओर रेल-पटरियाँ हैं
दूसरी ओर बरसाती नाला
मध्य मे छितराये
अपनी ही विष्टा म धँसी भैंसो के बाडे ।

श्मशान तक फैल गया है उपनगर
जिसम खप गये हैं खेत-खलिहान
अवैध आबादी और पानीदार कुएँ
कँटीले टेढे-मेढे झाड, किसानी गीत
अब तारकोल—ईंटें—रोडी—सीमेंट का
शतरजी खेल है शेष
चौपड पर प्राय झुके हुए बूढे

खिसकती गोटियाँ

इनके नीचे कुओं में दफ्न है युवा-मन
स्थान और समय के एक बिन्दु पर
पड़े हो इन्होंने भरी है और कुओं की गहराई
—आवारा पशुओं के शव
संक्रामक रोगियों के वस्त्र
कूड़ा बीनती लड़कियाँ
बलात्कारों हत्याओं के चिह्न
पिछवाड़े में फेंके लोथड़े ...
इन के चारों ओर भाँवरी लेते
बचपन की धूलों और भूलों में
गवाह थे। नाखुन। छोटे
बड़े
होते होते
एक की आँखें नहीं रहीं
दूसरे की जीभ
तीसरे का घोंघे की तरह बैठ गया कंधा
चौथे गहरे किसे पनीले खड्डे में फँसा
गाते हुए रोता है
पुनःआयी पगलियाँ निकल जाने पर
सुनता है क्या। मुझे कहने वाला आदमी
कैसा होता है ?

कभी-कभी उपनगर के किनारों को गिराती है बरसाती [नाले की धार
ऐसे कुछ भी अलौकिक घटने पर यहाँ
अब नहीं होती हैरानी
कुछ स्थगित अपने ही ऊपर
गिरता है ओला। पूरा का पूरा
और गेहूँ-चने
पानी की एक और परत
फिर जमी है
आस-पास अब भी गड्ढे हैं
जहाँ बरसातों के पानी जमता है

घास उगती है, पशु चरते हैं
—जहाँ अब भी कोई शर्मदार डूब मरता है

उप-चुनाव। सब कहीं फैली उत्तेजना
धमनियों मे मरोड लेता खून नारो मे गलता
व्यक्ति खामखाह जलता है। यह ऐसी आग है
जो सफेदी पर खिलाती है लाल गुलाब—बेतरतीब छींटे
और दिन-रात किसी अज्ञात यातना-सी जलती है
कोई मशाल
नफरत की तरह
उठने बगूलो मे उडते लोग
किरकिरी बन आँखो मे भरते है
कीच बन बहते हैं···

इन्ही उप-चुनावो मे भटकती हैं वृत्तियाँ
गदी होती है दीवारें
युद्धरत है चिल्लाते पोस्टरो की सस्कृति

घाव पर से खुरण्ड छीलता भगतू हैरान है
'भगतू अपग है'
'कहाँ है उसका वोट ?'
और भगतू एकपर्ची का खिलौना बना
आधे में सफेद
आधे म काला कर
खेलता है धूप-छाँह
दिन रात
उसे कौन समझाए
पर्ची दिन में पडती है
गिनती रात में
और हर समय घोषणाएँ

वस्तुओं का अस्तित्व आपस में टकराकर आज
नही पैदा करता कोई तीसरा अस्तित्व
बल्कि टूटने की भौडी आवाजें

ग्रामीणपन की जाहिली से भर रही हैं
शहरी नंगेपन की खूबसूरती पर
बे-तरह मर रही हैं। दायें से
बायें
भर गयी है हवा (कहने को)
पर मुख्य चौराहे पर बच्चों को लिए खड़ा भिखारी
अब भी
दायें हाथ से माँगता है भीख
यद्यपि-मध्यान्तर के इन चुनावों में फिर
धूल धक्कड़ में लिपटी
गाँव-देहातों को रौंदकर आयी कारें
पहले ही की रफ्तार से गुजर गयी हैं
यह जरूर हुआ है कि उपनगर का माहौल
पहले से कुछ गर्म हो गया है और औसत आदमी
उतना ही बे-शर्म

अँधेरे में अब भी
कुछ इधर से
उधर सरकता है
रोशनी में
छत का नया रूप
गिरते-गिरते सम्हलता है

आज फिर कोई निकल गया है एक शीशा
किसी तरह
उतार ले गया है
पीछे
रोते
शहर, शहर को काट रहा है

सरकारी और गैरसरकारी में संतुलन साधे
विश्वास और [illegible] की [illegible] रेखाओं पर झूलता
[illegible] और [illegible] के बीच
खड़ा [illegible] आदमी

शर्म की चीज है
चुनाव की नहीं !

उप-समय के ताप मे पिघलकर बहते इस आदमी की
सर्प दृष्टि फोड़कर देखो
ठंडे सिक्कों की छाप व्यवस्था से गड़ी है
—यहाँ लोहे की छड़ों मे बदल रही हैं इमारतें
गारे म मजदूर
नफरत मे बच्चे
ईंटों मे कारीगर
कमीशन मे जमादार
अधिकारी घूसखोरी मे
मालिक कोठी मे, ठाठ मे
ठुसब्बल में सब दफन हैं
व्यवस्था से
अटे-सटे
दिन-रात
खट्-खट्, चीं-चीं, तोड़-फोड़
और यो ऊपर उठ रहा है उपनगर

जहाँ-जहाँ उपनगर ने सिर उठाया है
औसत आदमी ने वहीं धक्का खाया है

उपचारों की व्यर्थता मे शक की तरह सक्रिय लोग
रात को डरावना बनाती वीरान आवाजें
आकाश बुहारती एरोड्रम की हरी-लाल रोशनियाँ
देहात सोये हैं पेट म घुटने गाड़े
गड्ड मड्ड । बे-होश
लकदक बस्तियों की *अव्यवस्थित आबादी*
अर्ध चेतन मनसूबों की तरह
अमीबा सा फैलाता है नकली पाँव
उपनगर
उप-चेतना की कंदराओं मे फैलता घुलता
कितना घिनौना हो गया है जीव

अवसर-अवकाश में गलकर बहते हैं अंग
सुविधा की धान में
नट् सवार
दुविधा में ग्रस्त है पूरा व्याकरण

वर-शीष्म ही सच है। अब
बद्-हवास शून्य में
टंगी है धुएँ की छत
न टूटेगी
न उठेगी ऊपर
अँगीठियों से छीजता धुआँ
गली में जकड़ा तना है
रेंगता हुआ चलता है समानान्तर
यह हवाई छाता
यहीं पर बना है
अकाल और युद्ध में देता काम
जैसे बीमारी में उप-राम

अपनी सड़क के बीच मिला है भगत्
उभरा उभरा। घबराया। जिम्मेदार।
गाड़ के खोल पर गिरा चेहरा
भटकी कातर आँखें। अपनी ही भूमिका में गुम होता
विद्रूप, अपने सरकारी कर्म में डूब मरता हुआ कहता है:
'हमें नौकरी दिला दो'
बदहवासी में घूमते बसीन बच्चों की आवारगी
गली में पीछे पड़ी जोरदार घूँसों की मार
उपनगर की खामियों से मारने की थकान
सूने दालानों में घूमती हवा की हाय हाय
एक बिन्दु पर मिलकर चलते हैं सब
एक साथ
टटपुँजी रेल की पटरियों के नीचे से निकल कर
गुजरता है उनका अभिवादन
उपनगर स्टेशन देती गवाही
[illegible]

बनाया गया होआ
जिस पर सिर की जगह पुरानी हँडिया टिकी हो औंधी
पटरी पर ठीक मेरे सामने खड़ा है वह
हवा मे झूलता
आँधी मे टूटा तना
वेदना की तरल रेखा
अपनी ही धुरी पर लगातार घूमता
अनुभव खण्ड

हर घटना के लिए चढ़ो
और छोटे धधो मे तरक्की पर है
उपनगर। गँवारू सुरो म रामनाम गाते मँगते
हाथो की उँगलियो म टूटे घड़े की टिकुलियाँ बजाते
गुजर जाते हैं पीछे
पहाड़ी की ओर
जिसकी सरहदो पर बिकता है ट्रक की ट्यूबो मे आया
अवैध ठर्रा। इन वर्षों इसमे जुड़ा सारा व्यवसाय तन
पनपा है खूब। दरअसल गये चुनावो मे
जहाँ भी गिरी हैं हैलिकॉप्टर की पर्चियाँ
वहीं लहलहाई है कुकुरमुत्तो की फसल।
नागरिक के धन और निर्दोष के तन पर
अधिकार की तरह सजग
रात भर गश्त पर तैनात पुलिस
मस्त है चौक मे एकत्र
हिजड़ों के गानों मे

एक भाव है
जो ऐंठते हुए खुलता है और फैलने के बाद
किलकारी मार टूट कर बिखर जाता है। उसे
सँभाले हुए जनतन्त्र की तरह हर वस्तु को दोहराता
जागता है बहुरूपिया
बिचकाता है आँख मौसम।

दूसरो का

नंगा करने के क्रम से गुजरते
स्वयं नंगा होते (हुए)
मौसम को वक्ष पर झेलना। कई जगह पटक कर उठाना
माथ चलाना और रास्ते की रेत में पैरों का धँसते रहना
फिसलने इरादों दलदल से निकालकर आगे रखने ही पैर
चारों ओर फूटते शोर को
पीठ देकर भागना सम्भव तो होता है
पर रोशनी
चटख रंगों में भरती है चमत्कार
गहनी नहीं नंगापन
मनहूसियत।

यह एक जरूरी बात है
जिसमें खो रहा है उपनगर का भूगोल
चीखते हैं वीराने—'हमारा हिसाब करो'
हवा जगह बे-जगह घूमती है आवारा। इस आवारा हवा में पैना
मौसमों का पीछा करता समझदार हो गया है यह बच्चा
जो उदासी में रहता है। लम्बी सड़कों पर छलाँगता
पता देने वाली दहशत को मुट्ठियों में भींचे
ढलानों पर उतरता
धुआँ उड़ाता
क्या आप पहचानते हैं इसे
ईर्ष्या बन जागते हुए गूँथ रहा है सबकी देह में पुतली
परिचित मिट्टी की गंध
बरसात [illegible] के [illegible] की तरह का
टूट रहा है
जगह-जगह
[illegible] मवाद
[illegible] यह [illegible] की धूल के साथ कहीं से आता है
[illegible] ! [illegible] में बहता
[illegible] लिया है
[illegible] है और
—[illegible] ! [illegible] ! [illegible]!"
—"[illegible] है"

—'वह किसका बच्चा है ?'

तुमने भँवर मे फँसे डूबते आदमी को देखा है ?
ठीक ऐसे ही जीवन को लेकर कुचक्र मे फँसे हैं यहाँ के मतदाता
—बँधी टाँगो से उचक-उचक चलते हैं
जूझते
पैरो के नीचे की गली हवा पर खडे
भीतर की हड्डियो मे कैद
घर लौटते सघर्ष के
पदचिह्नो को दोहराते
अपने ही मात्रा की स्मृति मे चलते
नक्षत्रो से बँधे घूमते घेरों मे
आगे-पीछे टूटते

दायी ओर नये रेलवे फाटक पर बन रहा है पुल
रात भर चलता है काम ! काँपता रहता है उपनगर
असाध्य रोगो की तनी
चाबुक की नोक पर कुलबुलाता
अधर मे उठा अमरू
गीदड-सा रोता है सारी रात
उसकी अरीहट सीध आकाश मे उठे गर्डरो से टकराकर
लुढकती है नीचे
और चोट खाकर मुँकुआती हुई
घर-घर घूमती
द्वार खटखटाती है
फिर वीमार अमरू के पास लौट
दूसरी वार के लिए पायताने रूकी थरथराती है
पास ही अमरू का परिवार सोया है
जिसमें लाभकीर है। दो जवान वेटियाँ हैं
कमाऊ ! एक पुत्र है जो दौरे पर रहता है
और इस नुक्कड मे वह स्वय पडा है
आवाज के मरने का एहसास !

माँ की आँखें जा रही हैं

छिन रहा है दुनिया का रूप-रंग
अब उसे याद नहीं रहती संध्या की आरती
दीया-बाती। बल्कि उभर आती है
उछलकर
पैशाचिक हँसी के साथ एक लम्बी रात
तेज़ों में मिचमिचाती आँखों में चमकती गोधूलि

ज़मीन तक झुक आयी है अंगूर की बेल
गंभीरता में तन आया शाम का झुटपुटा
सीमेन्ट में डूबती है रोज़
जाते दिन की पीली कुम्हलाई रोशनी की आभा
अपनी इन्हीं आँखों के आगे असमय ही मरते
अंजुरी में कितने फूलों को विसर्जित करते
देखी है उसने बहती गंगा की धार
इन लहरों पर बदरंग होते रक्त-कमलों का लेखा
आज किस-किस को सुनाए
अन्धे युग में घुल रही है माँ !

मेरे ही रक्त से जुड़ा
हड्डियों के पिंजरे में जकड़ा
'मांगोलीय मूढ़ता' में लिपटा
तेरह वर्ष का बच्चा है एक
दहलीज़ में पड़ा
चौकी पर बैठ रेंगता है
बाहर-भीतर
निरंतर
'इसे मरने दस वर्ष लगेंगे'—डाक्टर का कहना है
हँस हँस कहना
दलदल में धँसते रहना। स्वस्थ !
क्या सागर में वह मरता है ?
या अवरुद्ध उत्कर्षों
चौड़ों पर यही बात को कहना है, विनोद ?

दरवाज़ा अपना उसका बाल

शाम को घर नहीं रहता
तिल-तिल मरते बच्चे की आँखों मे भरकर भटकता है
ताश के पत्तों मे बँटता
लम्बे कशों में खिंचता
बीडी के धुएँ मे उडता हुआ लौटता है दोबारा
जबकि घर के बर्तनों को चाटकर
गली के मोड पर मिलते हैं ऊँची आवाज मे रोते कुत्ते
—और वह साजिश की तरह घुसता है भीतर

—'बाहर मत झाँको'
—'भीतर मत झाँको'
फडफडाती हैं वर्जनाएँ
—'तुम्हारी आँखें कच्ची है
बाहर आँधी है और भीतर कुएँ की खुदाई'
उन्होने डरकर सिर भीतर कर लिया। यहीं से शुरू होता है
सीलन, उमस और क्षरता का इतिहास

—'क्या कहा, कुएँ मे झाँकने से क्या होता है ?'
बाहर से लौटा आदमी पहले अपने पर ही टूटता है
बाज की तरह झपट्टा मार
फिर पहचानता है घर बार
खौफ को निकाल
बाएँ हाथ से
दायी जेब मे भरता है
रास्ते को
नाक पर टिका कर
भागता है सीधा

उमस मे घुट्ट है आकाश
पीठ पीछे उमडते चले आ रहे हैं बादल। उत्तर मे
सरकारी कोष से सहायतार्थ पत्र लिखवाता भगतू
कहता है 'जल्दी करो
खराब होने वाला है मौसम'
उसकी पहुँच मे हर बार उग आती है बरसात

या आँधी या आलस्य
उसकी आँखों में सूखी नदी का कछार है
करवट काशी गाते सूरदास की मुद्रा
और भौंहों पर टिकी मेन रोड
जिस पर चिलचिलाती हैं दुर्घटना की सम्भावनाएँ
पत्र को मेज पर टिका
होंठ उठा
उँगलियों में पेन थाम
मदनू पैरों से करता है हस्ताक्षर
और मेरी ओर देखकर हँसता है साभिप्राय
कितनी तेजी से बदल रहा है व्याकरण

यों उपनगर है मेरा देश
भूगोल पर स्थित
रात में सोया पीपल
(सुनता जागता उन्माद)
अँधेरे उजाले के मिथुन में
निचुड़कर बहता
पसीजता
अंधड़ और बारिश के बाद की करुण स्थितियाँ
गुमसी हुई
घौली
धुली धुली ··

वही
होगी
फिर उसने छोटी खिड़की को खोलने
साहस बर्फ बाद
निकला है एक औसत उदास
उदास कर पीतल की टहनी पर बैठ
गाना शुरू करता है—'गँवार बाजा'
लोगों की 'चर्च' के शब्द लिख रहा रूपों है चिड़ियों
उपनगर में पैनी है बदतमीजी

अब हवाएँ एक ही ओर भाग रही हैं
नाले में आयी है बाढ
किनारे टूट रहे हैं

आजकल भगतू ट्रांजिस्टर को पैरों में पकड
दिन में सुनता है गाने
और रात को समाचार
यों केवल वही दीखता है लाचार
बाकी सब व्यस्त ।

पत्थर में गडती कील देखी है ?
और जब कोई स्वयं पर ही कील सा गडने लगे ?
इस बार मुझे निर्णय लेते देर नहीं लगी
देह पर लगे सभी टाँके काट
समझौते की तरह देह को तोड
मैं युद्ध में शामिल हो गया
लकवा मारी टाँगों को झुलाता
पीडा को देह में जगह-जगह खोसता
क्रूरता में चलता हुआ
खून थूकता
अपने को कितना मार सकता है कोई
मैं देख रहा था

बंद कमरे में देह की बुहारनी को उलटा पढते
मैं अकेला नहीं था
मेरे साथ मेरा परिवेश और वस्तुएँ
उसी क्रम में निःसत्व हो रही थीं
बहुत देर तक पीछा करने पर
बार-बार सँभलती
खूँख्वार लडखडाती
अँधेरे में भटकती
थक कर गिर पडी थी एक चीख

मेन रोड पर चलता हुआ पागल सहसा बडबडाता है :

- 'उप-स्थितियों से ले कर उप-दशाओं तक फैले तंत्र में झूलते
बनैले वर्तमान
विहून
घुनते हुए'

फिर अपनी भीगी कमीज को निचोड़ कर
फटकारता हुआ प्राय: चीखते हुए कहता है
—कहाँ हो, यार?
उबकाई आ रही है
मूर्ख!
जल्दी करो!
दृश्य बदलो!!

भाषा के भाव को नही खोते
न नाक का नक्शा बिगाडते हैं

मैं मिणिया वल्द भूरजी रेत मे पैदा हुआ
रेत मे बडा हुआ
कही भी रहूँ कुछ भी कहूँ धड सब हमेशा रेत मे गडा हुआ
फिर ऊपर है एक बारूद का सिर
जो किसी तलवर मे नही
तमचे मे घुसना पसद करता है ताकि बाजीगरो की
बुनियाद को झकझोर सके

इनकार सिर्फ इनकार होता है और उसे जबरन किसी के
ओठो से अलग नही किया जा सकता

मुझे पेट मे लेकर
जिस जगल के ओर छोर सूने फल बटोरती
रही मेरी माई
वह नौ महीने बाद काट लिया गया
और अब वहाँ
इतने नगे ठूह हैं कि कोई उन्ह छू भर दे तो पहनने-ओढने
का शऊर भूल जाये

चौतरफ गर्द के गलीचे हैं घास का घराना है
घास जिसे मवेशी खाते हैं
घास जो शर्म और शकाओ को ढकती है
घास जिसके अन्यमनस्क कोने
जितनी खिन्नता से बुझते हैं उतनी ही तेजी और
सख्ती से आग को बाजुओ मे थाम लेते हैं
जब-जब मैं पानी की जगह थूक घूँटते-घूँटते थकने
और थकने लगता हूँ
उकता जाता हूँ उपायो से
अपने गुस्से को कमीज-पायजामे के साथ तहा कर
चद्दर मे लपेट कर
लौट पडता हूँ घुप्प घास के घराने

की पीली पगडंडियों पर संशयहीन
वे मेरी हैं मुझे उन गलियों-दरवाजों-दस्तूरों तक ले
जाती हैं बेबाक
अपने लोगों की पदचाप सुनने के लिए जो कुत्तों की
तरह कान उठाये रखते हैं

मेरी बगल में एक धारीदार थैला होता है या मोम की भाँति
गलता हुआ उष्ण मोह
कि झुकूँ नीचे झुकूँ बेआवाज़
भूरी भभकती बालू को हथेलियों में उठा लूँ
सूँघ कर देखूँ उसकी बू
सन्नाटे जैसी सनसनीखेज़ और सरासर सूफी

तभी नजर आती है रावगढ़ी
समरू की चपटी खोपड़ी   हुक्के की नाल
हर फूँक के साथ उछलती है चिलम की लौ

अंगारे की चौंध में थरथराता है उसका चेचक के दानों
से भरा-डरा मुख
जैसे कोई माँस-लोथड़ा
माँची के मूँजे पर रख दिया गया हो

यह सच है कि समरू के पास
अपने ज़ख्मों का कोई सिलसिलेवार ब्यौरा नहीं है
सिवा इसके कि मोटियों की मार से मुड़ी हुई कमर
कभी फोड़े की भाँति टीसने लगती है
कभी मवाद में लिसपिस हो उठती है
उसे नहीं पता
कि उसका संसार
बुरा है या भला है क्योंकि लू की लपटों और
'अन्नदाता'
की रोष भरी चिनगारियों
में दिन-रात रहने के बावजूद वह पूरी
तरह नहीं जला है

208 . कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

उसके टखनों पर कड़ी मशक्कत के खुरदुरे गट्टे हैं
मेहनत
हाँ हाड़-तोड़ मेहनत छूतही बीमारी है
यह जिसको लगती है
रोम-रोम रौंद कर ठगती है

रावले के रूखों की करखरी शाखाएँ
अभी भी इस तरह सनसनाती हैं हवा मे
मानो ठाकर-सा गोले-गोलियों पर कोड़े बरसा रहे हो

टीलों पर चमक रही हैं मुर्दा जानवरों की ठठरियाँ
और मैं
भिणिया वल्द भूरजी वासी छत्तर ढाणी
एक नुक्ते पर पहुँचकर भीत की तरह खामोश
खरगोश हो गया हूँ
मेरी समझ मे नही आता कि इस द्वन्द्व इस
बियाबान
विलाप को किस ढग से कहा जाये
कैसे उधेड़ा जाए रेत मे धँसी हुई जड़ो का जन्म-जाल
हालाँकि मुझे उसका रेशा-रेशा जबानी याद है
बोलना चाहता हूँ कि गले का टेंटुवा
बाहर निकल आता है फट् ऊँट के मीगने-सा
जैसे चूल्हे मे चिटखते हैं लकड़ियों के डठल
होठों से
किरच-किरच लफ्ज फूटते हैं

रीढ मे दौड़ जाती है किटकिटी कँपकँपी जाँघों मे झाँट
उलझने लगती है गुच्छा-गुच्छ

कितने ही दुख कितने ही कन्धे कितनी ही कुहनियाँ
कितने ही विकलांग कुल दबे पड़े हैं धूल मे
कोढ़ के धब्बों से ढके हुए हाथ
दाद की धारियों से कटे हुए पुट्ठे
दमे से छलनी फेफड़े

फीके आसमान मे पख तैराती हैं
अपसगुनी चीलें
उनकी वहरी छायाएँ

वालू की सलवटों पर मडरा कर
पुलीसिया मकाम के खास फाटक मे लोप हो जाती है
सहसा —
सुनते हैं वहाँ एक भयावह 'अचरज' एक योथ है
आधी रात को
जिसमे इकट्ठी होती हैं गाँव ढाणियो की जज्जर
चुडैलें और जिन्नो की गोद मे बैठकर
चौपड खेलती हैं
वह एक अलग दुनियाँ है
यह एक अलग दुनियाँ है ··

यह भुरभुरी भडास भरी दुनियाँ यह रेगिस्तान की
खौलती हुई स्याही
डालो इस कडाही मे पैर डालो
गहरे उतरो भाई
इतनी तेज इतनी गरमास वाली आँधियाँ
चलती हैं चौतरफ कि एक सच्ची साँस ले सकना
और पपोटे फैलाकर किसी रास रोगन को सही-सही
देख पाना मुश्किल है
लूओं मे सीजती रहती है त्वचा
हड्डियों मे सूराख हो जाते हैं
पुतलियो के बीच से गुजरता है छरँदार पीलिया
बारम्बार पहाडो का बद सम्हाल कर पृथ्वी को
पोसने वाले मिनख
पहाड़ों की तरह अधे हो जाते हैं

वे अंधे और पंगु बाबाहीन जो जनतंत्र का
बोझ उठाने वाले
दमदार खम्बे हैं
कतई नहीं जानते कि वे क्या हैं और क्यों हैं

उन्हे अपनी हैसियत   अपनी ताकत की कोई
परवाह नही न ही यह मलाल कि
सालो-साल वे बेगारो मे इस्तेमाल किए जा रहे हैं

उनकी खाल खपरैल बन चुकी है और उन्हे किसी
मौसम की मार मखोल की फिक्र नही
ऐड़ियो-तलुवो मे फट चुकी हैं इस कदर
दरारें बिवाइयाँ कि खेतो की मेड
से लगी हुई खाइयो
पर हँसी आती है
जेठ-बैसाख के ताप मे कोरी चाम पर उठते हैं फफोले
पानी के बुलबुलो की भाँति फूट
जाते हैं   पसीने की धार कभी भाप बन कर उड जाती है

जाने कहाँ
कभी रोये-रोये मे खुश्क होकर खुजलाने लगती है

वे जुझारू जन
जिन्दा है पर उनके भीतर मौत पसरी हुई है
वे जीवन मे जुताई मे शामिल हैं इसलिए मौत को
नही जानते

उन्हे किसी और ठौर मे कतई दिलचस्पी नही है
इस तरह अलग अनसुने अनदेखे रहने के लिए वे
लाचार भी नहीं बल्कि अपने भिन्न तरीके से तैयार है

यह तैयारी नफरत के बगूलो को
रोककर रखने

मे वे मुंचने चले जाते हैं दिन-ब-दिन
एक घडी ऐसी आती है कि गोठ के गोठ मिल कर
रुजगार की तलाश मे वे शहरो की तरफ
निकल पड़ते हैं ब-र-बा-द
देह का फौलाद पिघलकर बन जाता है पसीने का
नमक
गोदामो मे कैद कर देस-दिसावर के अलङ्कृत नागरिको
निर्विरोध निर्वाचित नाबदानो
को सौंप दिया जाता है
ताकि जश्ने-आजादी के मौके पर यह भोजन को
बेहतरीन बना सकें पुराने जायके को बाकायदा
बदल सकें

बरसो बादऽऽऽऽद
बारिश के बादल देख कर
जब वे दो कौडी के मजूर
किसानों की तरह कांख बजाते अपनी अधकचरी
अनाथ ढाणियों मे लौटते हैं तो
उनकी औरतें
साहूकार-बनियों के री-री बच्चे जनती हुई मिलती हैं

अलबत्ता

उन अघोरी औरतों का सत्त कभी भग नही होता
वे जिस द्वार-दौर से परायों की गन्दगी अपने अन्दर
लेती हैं उसी से
सड़ाध की लोथ बाहर फेंक कर पुरुत-चंगी हो जाती हैं

होता यह भी है कि धनियों की वापसी पर
वे उन गलीज री-री बच्चों को
घूरे के बीच या गिरा हुआ कौर जिसाकर
पल्ले झाड लेती हैं और फिर नए सिरे से
भर्तों का उजास समेट कर
अपने खून को अपने खून की औलाद

के हक में उबालना शुरू कर देती हैं
कोई ग्लानि नहीं
कोई हिचक नहीं न पछतावा न क्षमा याचना

हालत पर गहराई या कहें ढिठाई
से सोचना खुद कटघरे के बीच खड़ा करना है

क्यों डालें स्वयं को दया की दारुण देगची में
कि हर क्षण
किसी जुर्म का अहसास आँतों को कुतरे
किस लिए तरजीह दें उस बदशक्ल भावुकता को
कि वह आगे बढ़ कर जिरह करे

ये मेरे कबीले की कृपाण
और किफायती स्त्रियाँ हैं और उन्होंने
जिन्दगी के
जिस्मानी फरेब को अच्छी तरह समझ लिया है

थमी हुई तान की भाँति तन्ना रही है
कमायचे की धुन
उसके सहारे-सहारे मैं अपने
उखड़े-पुखड़े भूगोल
को खोज रहा हूँ खोद रहा हूँ खींच कर ला रहा हूँ
हिन्दी हिन्दुस्तान में

पेड़ पर पालथी मार कर बैठी है काली कोचरी
परात में पत्ते बटोर कर
माई मसाला पीस रही है   नथ की सींक धूप में
टिमकी-सी लगती है

भवों की लकीरें आगे-पीछे खो जाती हैं
ज्यों ही थमती है सिलवट्टे की तुनकमिजाज तान
आँखें चेहरे से बड़ी हो जाती हैं

इतमीनान घनिष्ठ इतमीनान को मसूड़ों से चिपका कर
दाँत कुरेद रही है मँझली ठकुराणी
सोने की सलाई से फूटती हुई चिलक
तितली की तरह पाँखें पलकें झपकाती है टटोलती
है नाभि की नष्ट नदीदी लहरों को

क्या शेष रह गया इस उचाट तन में
हल्की लोबान हल्की दलदली दूब
की गन्ध
जो बिस्तर की बासी शिकनों में उलझ कर उतार
देती है   अधीर अपनापा   दैनिक दाम्पत्य

बहते हुए कीट-मगूरों के साथ यह सब बह जाएगा
यह टोपीदार वक्ष यह टाँगों की टकार
यह देह का दबदबा

घास-फूस की झोंपड़ियाँ और खीप के किवाड़

मैं रही कुन्दा घसा रहा हूँ कहो उचक कर झाँकता हूँ
ऊदबिलाव

नाई का उस्तरा नाई की कनपटियों में
चीरा लगा रहा है
बढ़ई की आरी बढ़ई के बेडौल ढाँचे की काट छाँट कर
तख्ते-ताऊस बना रही है
जुलाहे की जोरू
अपने रंगे धागों को रंगे नंगे बदन पर ओढ़कर
सो गयी है
किसी की नजर में नहीं आता यह नजारा
कि 'पंचार' भवन में
दिवारियाँ दालान में झाड़ू देते-देते
भूरेया की नेक दुल्हन अब झाड़ू हो गयी है

'टांके रमजू दरजी के कमीज में हैं कुरते में नहीं'

के हक मे उबालना शुरू कर देती हैं
कोई ग्लानि नहीं
कोई हिचक नहीं न पछतावा न क्षमा याचना

हालत पर गहराई या कहें ढिठाई
से सोचना खुद कटघरे के बीच खड़ा करना है

क्यो डालें स्वय को दया की दारुण देगची मे
कि हर क्षण
किसी जुर्म का अहसास आँतो को कुतरे
किस लिए तरजीह दें उस बदशक्ल भावुकता को
कि वह आगे बढ़ कर जिरह करे

ये मेरे कबीले की कृपाण
और किफायती स्त्रियाँ है और उन्होने
जिन्दगी के
जिस्मानी फरेब को अच्छी तरह समझ लिया है

कसी हुई तात की भाँति तन्ना रही है
कमायचे की धुन
उसके सहारे-सहारे मैं अपने
उखड़े-पुखड़े भूगोल
को खोज रहा हूँ खोद रहा हूँ खीच कर ला रहा हूँ
हिन्दी हिन्दुस्तान मे

पेड पर पालथी मार कर बैठी है कानी कोचरी
परात मे पत्ते बटोर कर
माई मसाला पीस रही है   नथ की सीक धूप मे
टिमकी-सी लगती है

भवो की लकीरे आगे-पीछे खो जाती हैं
ज्यों ही थमती है सिलवट्टे की तुनकमिज़ाज तान
आँखें चेहरे से बडी हो जाती हैं

इत्मीनान घनिष्ठ इतमीनान को मसूड़ों से चिपका कर
दाँत कुरेद रही है मँझली ठकुराणी
सान की सलाई से फूटती हुई चिलक
तितली की तरह पाँखें पलकें झपकाती है टटोलती
है नाभि की नष्ट नदीदी लहरों को

क्या शेष रह गया इस उचाट तन में
हल्की लोबान हल्की दलदली दूब
की गंध
जो बिस्तर की बासी शिकनों में उलझ कर उतार
देती हैं अधीर अपनापा दैनिक दाम्पत्य

बहते हुए मोट-मगूरों के साथ यह सब बह जाएगा
यह टोपीदार बस यह टाँगों की टकार
यह देह का दड़बा

काँस-फूस की झोंपड़ियाँ और धीप के किवाड़

मैं वही कुन्दा बजा रहा हूँ वही उचक कर झाँकता हूँ
ऊदबिलाव

नाई का उस्तरा नाई की कनपटियों में
धीरा लगा रहा है
बढ़ई की आरी बढ़ई के बेडौल डील की काट-छाँट कर
शक्ले-साऊन बना रही है
जुलाहे की जोरू
मरने लगे वालों को कफ़न नंगे बदन पर ओढ़कर
सो गयी है
किसी की नज़र में नहीं आता यह तमाशा
कि 'पकान' भवन के
दिवालियों दालान में झाड़ू दे-देके
मूरतों की नव दुल्हन अब झाड़ू हो गयी है

'ठोके रमज़ू दरजी के नसीब में है कुरता में नहीं'

एक ऊँघती उपेक्षा के साथ
वह इस सांच का स्वीकारता है और सख्ती
से सुई मे अगुश्ताना रोप देता है

सदियो के स्यापे को गाढा करता रहता है लम्बरदार
झट् कलम उठाकर
टीप देता है ऐसा ब्रह्म बयान
कि काश्तकारी के हरूफ
पट्टेदारी की दवात म डूब जाते हैं
फिर किसी की कुड़की किसी का चालान
किसी की जमानत—
खूराक और खलिहान पटवारी के पाताल मे गुम
हो जाते हैं

एक अनन्त रुचि और रुझान से
रजिस्टर के पन्ने
पलट रहा है गश्ती गिरदावर
किस बिल मे कौन सा सांप है किस खाते म
कौन सा झूठ
फत्ते दीदे फाड-फाड कर फालतू हो गया है

भूल गया है सचमुच वह भूल गया है कि हाकिम के
अगाडी और घोडे की पछाडी,
खड़ा रहन वाला मार खाता है

लेकिन आदमी
अक्सर अपनी नामालूम हरकतो के सामने
हार जाता है

नमाज पूरी कर मुस्करा रहे हैं
लगातार मुस्करा रहे हैं रब्बे मियां और
झीर झीर आस्तीन
की अटेरन म
बूंद-बूंद आंसू चिपका रहे हैं

उपलों और थेपड़ियों की
कोख में
उगती हैं गोरी चिट्टी माटी मिली नासपीटी छोरियाँ
हँसती-खेलती
दादा भुवा की झाड़-झखाड़ लटों में फँसकर
जूएँ चुगने लगती हैं
एक मुट्ठी दो मुट्ठी तीन मुट्ठी चार मुट्ठी

दसवीं मुट्ठी के बाद
उनकी नन्ही निराश छातियों में
चुनचुनी मचने लगती है   बरौनियों में
झनझना उठते हैं विस्मय के वाद्य

मंद-मंद सुर साधे छलकता है
'ढोला-मरवण' का बिछोह
उमंगें भरती हुई सूखे सरोवर की पगडियाँ
तलफना कर
बिछ जाती हैं

किन्तु जब चौदहवीं मुट्ठी
खुलती है
बन्द होती है
एक झांझ झपकार माँ-बाप की झुर्रियों में डग भरती
हुई
करताल बजाने लगती है

कच्ची कोंपलों की रुनझुन में
सहम उठता है मुनवा
रेतीले रथ राग रतौंधी का बहाना बुनते हैं
सद्गुन के छिलके उतारती हुई माई
अचानक
एक अपरिचित शोर गुनकर हड़बड़ा उठती है
और उदास होकर सोचने लगती है
बाहर

लड़ाई खत्म कर लौट रहे हैं फौज के सिपाही हौलदार
कतारों-कतार

वह डरकर बखारी मे छुप जाती है
खाकी वर्दिया पुरजोर पेटियां सबको डराती हैं
ये कभी किसी फैसले पर
नही पहुचती
न दूसरो को पहुँचने देती हैं

लडाई आती है जिन रास्तो
से होकर
लडाई चली जाती है उन रास्तो को खोकर

लडाई हमेशा मैदानो से
शुरू होती है पर मैदानो मे खत्म नही होती

लडाई जिन सुर्खियो की सियासत मे
सूक्तिया गढती है
वे सुर्खिया काली पड जाती हैं
आखिरकार
कोई चिमना वल्द रिसालू या भादर वल्द गमीलाल
या चुन्नो खाँ वल्द सिराज
चौगान मे उकड़ू या औंधा गिरकर
चुपचाप
इन्तकाल के खानो को भरने लगता है,
काइयाँ कलईदार कागजो पर लेकर सुन्न अगूठो
की छाप
रकम का हिसाब ठीक करता है
और निपट नयी बेवाओ को उनके हिस्से का इनाम
बाँट देता है

फिर एक गहरी साँस
फिर एक गहरी फाँस और यह कड़वाहट
कि बचे हुए पैसो की गाठ सरकारी खजाने मे

न लौटा कर 'अम्मल' खरीद ली जाय
उसकी पीनक में सो लिया जाए मचान पर
हफ्तों महीनों बिलकुल मुर्दों की तरह

और क्या तरीका हो सकता है अपनी आत्मवंचना में
उमड़ते हुए मातम से
मुक्त होने का
देखो प्रजापति ! एक पल इधर मुड़कर देखो
तुम्हारी दिग्विजय और दिलासा
से दूर
'भारत दुरदशा' का यह सपाट सिफर अब
जिसमें वही कथोपकथन तक नहीं

लेकिन तुम देखोगे कैसे
तुम्हारे आँखें तो हैं ही नहीं
कोरे कान हैं और उन पर न जूँ रेंगती है न घू

मुँसी हुई मधुमक्खियों
और रोगी रेलपेल के बीच
टाँग दी गई है एक ईश्वरीय हाँडी उसकी तली
से बदस्तूर टपाटप
टपर-टपर गिर रहा है शहद   जुमलों के जिहादी
अन्धकार में

अन्धकार ही असलियत है अन्धकार ही अर्थशास्त्र
और उसे जंपुर से
दिल्ली तक के
निषादी मर्तबानों में
विशेषाधिकारों के साथ रख दिया गया है
ताकि बदनीज और बनाया के पर्व को साबित
किया जा सके

एक ही तरह   फुहारों की फुरहरी
जो तरल-से-ठोस है जिसे सबका ठेंस रखा है !

एक है नरसी   जिसने छापी मे
देखा लहराता हुआ समन्दर झागल निर्मल नीर
और पागल हो गया

—जहाँपनाह ! फिर भी तुमने उसे पनाह नही दी
घिसटता रहा बेचारा घालमेल मे
चीखता रहा चारजामे से दवा-ढँका
उस सुग्गे की भाँति
जो बाड के काटील पजो मे उलझ गया हो
बचने की उम्मीद गँवा बैठा हो—
एक है लँगडा
फौजी फकीरचन्द   परेड मे मार्च करते-करते जो
मतिमूढ मेढक बनकर रह गया है
अकडकर अडियल हो चुका है ढाँचा
सल्यूट ठोकते-झोकते हाथ हारमोनियम बन गए हैं
दिल मे अब धडकनें नही
कदम ताल की कुटिल ध्वनियाँ है जो
अकबका कर
धँस जाती है श्वास की धौंकनी मे
और राष्ट्रीय धुन के धन्नाटे पैदा करने लगती हैं !

एक है धापली   जिसके मगज मे
है रीती बावडी की भाँय-भाँय
इकतारे पर भैरूजी भगती ··
जिसने अडोस-पडोस मे वेदाना खिचडी पका रखी है !

एक है धुंकरसिंग   जो 'घणी खम्मा' के जमाने
मे खाँटी 'सिरदार' थे अब चुनाव की चाँदमारी मे
'परधान जी' साहेब
उसके नैण सदा नम रहते हैं नाराजगी मे
होठ केसर-कस्तूरी से
इतने तर
कि निचोडकर पी जाने की इच्छा होती है !

लोग रश्मियों की तरह अपनी शिराओं
को बेंटते हुए
आदतों के गरुड पुराण को गले में
लटका कर भटकते भागते हुए हताहत ये लोग…

झील में अटका कर एक कोना
बावली बूनी
सुखा रही है गीली ओढ़नी
कभी इस ओर कभी उस ओर झपाके देती है —

ऐसा लगता है पृथ्वी उसकी पकड़ से परे-परे
घूम रही है
और बुंदकियों में झर रहे हैं बेवाजब
मुड़-मुड़ बिच्छू
सूरज सरकंडों के पार
साझीदारों के सर्कस में लट्टा मेल रहा है

सांझ सचित्र गांव!

जैसे पाबूजी की पीतल मढ़ी 'पड़'
गाछ-गुजन के पोर-पोर पसरी हुई!

उप यही वक्त होता है अक्सर
जब पुकारता हुआ आता है वह मनहीन अजगर

उसके पीछे-पीछे
मुंह पर कट्टा बांधे कई और कई-कई लुटेरे
हाका दबकर हंगामा मचाते हुए घुड़सवार

कठोरतम में कुलबुलाते कीड़े

ये भूनों की नोक पर उठा लेते हैं भौंरों की
झरझराती फ़सलों की मेंड़
आंधी में आंखें फोड़ देते हैं!

अगूठियों के लिए कतर देते हैं अगुलियाँ
हँसुलियों की खातिर गर्दनें

वे घूरे से होकर गुजरते हैं और हँगते हुए बच्चों
पर ठोकरें बरसाते हैं
फिर उनके नाक कान काट कर भर लेते हैं
जेबों मे

वे जगी डकरैल जब तक डाका डालते हैं
चबूतरे के नगाड़े पर डका बजता रहता है
हाथा-पाई करने
वालों को 'काठ' मे कस दिया जाता है
उनके हुक्म से बुढे-बडेरे दाढी को
हिला डुला कर चौक का कचरा बुहारते हैं
खीसें निपोरते हैं हर दिन

लौटने से पहले
वे हरामी आटे के पीपों पर खड़े होकर
मूतते हैं
लड़कियों के लँहगो मे उँडेल देते हैं अंगीठियाँ
पुआलों और गट्ठरों और घास के खयालों मे फेंक
जाते हैं
मुँहफट मशालें
धू-धू जलता है भाग का घराना
ज्यू-स्यू वापस मुड़ता है सगीनों का लश्कर

अनाज के कोठे खाली हो जाते हैं साँय-साँय

किन्तु धीरे धीरे   उनमे भर जाती हैं
रोने और रेंकने की मिलीजुली आवाजें तनहाइयाँ
घाऊ के जख्मों से रिसता हुआ लहू
एक दर्रे मे गर्क हो जाता है उस समय भी जब
टिड्डों के दल खेतों की आबरू चर जाते हैं
हताशा की हिनहिन खत्म नहीं होती

फंकियाँ फाँकती हुई कराहती भूरी जाटणी
— जब तक जीना है यही 'इमरत' पीना है

मेरा अन्दरूनी उबाल उबकाइयों में
अनर्गल हो उठता है

कुछ नहीं अगल-बगल कुछ नहीं
बस
बलि के बकरे की एक बुदबुदाहट भरी 'बस'
कोई बसूली कोई कुल्हाड़ी नहीं
जिसकी धार से चीर कर घटना की फफूंद
अग्नि और आहुति
को अलहदा किया जा सके एक बार

मुगली स्याणी टोकती है भूल जा मिणिया
यह अदावत यह अपमान भूल जा
याद रख, कुए की मिट्टी कुए में गिरती है
तबाही और तसल्ली
हमें कहीं न कहीं मजबूत करती है

मा: मैं भूल नहीं पाता यह सब
एम. एस. ही सही मुझे इस बदसलूकी का
बदला लेना है
एतराज के उच्चारण में
एकाग्र होना है
याददाश्त मेरी कमजोरी है और अनगिनत
कमजोरियों
की गुंजलक में ही मैंने अपने आपको सुरक्षित
महसूस किया।
लोग मेरे लोग मुर्दों के लिबास में घिरे हुए

अंगरखे के बटनों को खोलकर
मौन तोड़ते हैं बाऊ —
जुगनुओं के ढेर से आग नहीं जलती चाहे जहाँ

सिगड़ी मे डालकर रखो
या बाल्टी मे—

यह उस जर्जर बूढे
मुहताज 'मुखिया' का तजुरबा है जिसने तम्बाकू के
बहाने अंगारो की धधक को पी-पीकर
उगला है
बगावत से बलगम तक का कठिन सफर
समझौते और सलामी से दूर रहकर लाघा है
आज भी
तीन तीसी उम्र को अलग उतार कर जब वह जोर
से हाक लगाता है
तो उसकी आवाज़ सात कोस से आगे
सुनायी देती है
जैसे तोपगोले के धमाके की गूँज

यो मैं किसी गलतफहमी म नही हूँ मुझे मालूम है
कि बैल का घाव कौवे को अच्छा लगता है
और सिरेपच
गादी पर उल्टा बैठे या सीधा
सिरेपच ही रहता है
उन सबकी पहचान भी मेरी बुगची मे है साफ-साफ
जो कुछ हदो मे बँध कर
आज निरुत्तर और निश्चल और निहत्थे है
उन्हे लेकर मैं न परेशान हूँ न डाँवाडोल
क्योकि मुझे उनसे बेहद प्यार है और बेमाप चिढ

वे ऐसे लोग है जिनके पास खोने के लिए कुछ नही है
अपनी विवशता और उदासी के सिवा

न उनके डील पर जिरहबख्तर की तामझाम
है न बर्छी-भाले की

न कनटोप का वजन है न अभिमान का

बुनियादी तौर पर वे सिर्फ़ मटियाली मूँछों और
जिन्द की अनमनी पहरनों में विश्वास रखते हैं

जब-जब मैं उनके पैबन्दों तार-तार खोपरों को
देखता हूँ
बेचैनी से भर उठता हूँ
फिर खींचतान कर सोचता हूँ कि वे उनके कपड़े
नहीं हैं औज़ार हैं
और औज़ारों को साथ रखना ज़रूरी है

सोचता हूँ यह भी मैं कई दफ़ा
कि वे जब चाहेंगे इतिहास के पेट को छेद डालेंगे
नेतृत्व की नींद को खरोंच देंगे
अनुमान से ऊपर निकल जायेंगे

वे चकित कर देंगे पालनी वालों को और भट्टियाँ
तोड़कर बिखर पड़ेंगे

मुझे उनके दमखम और दुस्साहस पर भरोसा है

जिस दिन वे तय कर लेंगे कि 'अब और गनाबत नहीं'
बदलू के धारों को
ताज़गी में तब्दील करने के लिए मिल जायेंगे

अपनी वाकफ़ियत के सहारे मैं इतना ही कह सकता हूँ
कि वे किसी चीज़ की व्याख्या
नहीं करेंगे
न मिसाल देंगे न तर्क
वक्त की रोशनी से उसी तरह लिपट जाएँगे जैसे
कोई चाकू
मूठ से जुड़ जाता है

अभी वे केवल नतमस्तक नट हैं
पसलियों में बाँस गड़ा कर गोल-गोल डोल रहे हैं

अभी वे केवल मामूली भोपे और नाकुछ साजिन्दे हैं
लय की लपलपाती जीभ को
सडासी की गिरफ्त मे लेने से पहले
रावणहत्थे की
खुर्राट खूंटियो को खोल रहे हैं

अभी वे बालू मे बिखरे हुए बीज हैं
उगेंगे तो एकजुट फसल के
सरफरोश धान-फूलो की तरह उपजेंगे

अभी मुझे प्रतीक्षा है समर सोरठो की
नखो के नश्तर बनने की
और यह प्रतीक्षा एक निगरानी एक नाकाबन्दी
एक लम्बी कविता है
जिसे मैं कौम की कलफ लगी किस्तो मे लिखना
चाहता हूँ
बारहमासा की करारी कतरनो मे बुनना
जैसे ऊन और आकाक्षा के अनन्य धागो से किसी
छापामार की जर्सी बुनी जाती है !

बलदेव खटिक

लीलाधर जगूड़ी

जन्म सन् 1944, धंगण गाव (जिला टिहरी)।

कृतियाँ

शंखमुखी शिखरों पर (1964)
नाटक जारी है (1972), इस यात्रा में (1974)
रात अभी मौजूद है (1976) बची हुई पृथ्वी (1977)

सम्प्रति मुस्टिक सौड़ (उत्तरकाशी) में अध्यापन

पता जगूडी सदन, जोशियाडा, उत्तरकाशी (उ० प्र०)

प्रस्तुत कविता 'बलदेव खटिक' 'बची हुई पृथ्वी' में संकलित है।

[आप लोग अपनी परवाह करें
अपने बच्चों की जांच करवायें
यह केवल अफवाह नहीं
(बल्कि जिन्दा होने की नयी शर्त है)
कि देश में कुछ लोग
पेट से ही पागल हो कर आ रहे हैं

लेकिन वे जब फायर करेंगे
तो यह तय है कि
इस बार कौवे नहीं मरेंगे।]

बलदेव खटिक

रात, बिपदा खाती गाय के जबड़े में
धीरे धीरे गायब हो रही थी
यह उसका अन्तिम छोर था
जिस पर एक बटन चमक रहा था

तभी हमारे गाँव के आकाश में
अचानक लोगों ने एक दरार देखी
गड्ढे से गाँव पर रोशनी फेंकती
यह पुलिस की गाड़ी थी

लेकिन यह इतना घना उजाला नहीं था
कि अँधेरे के भीतर दुबके अँधेरे में
कुछ आँखें, कुछ हाथ, कुछ पाँव चमक उठें

वे भड़भड़ाकर उतरे
और रँगलू के घर की ओर दौड़े
उनकी दुरुस्त और निर्विघ्न दौड़ बताती थी
कि हमारे गाँव की चाल खराब हो गयी है
उनकी पोशाक
हमारे गाँव के कुत्तों तक के लिए
अपरिचित थी

जिसके चिथड़े न पहने हुए हों
हमारे गाँव के कुत्ते उसे फाड़ डालेंगे
वे गाँव की गरीब जनता के कुत्ते हैं
सभ्य और अजनबी पोशाकों के दुश्मन
लेकिन चार जोड़ी
पुलिस के बूटों में
उन्हें बैल के चमड़े की गन्ध नहीं आ रही थी
उनके पुलिस पैर
एक लाइन में
जैसे जलओद उछल रहे थे

क्योंकि ऐसे मौके पर
जो जिसके पास है
उसका उपयोग जरूरी हो जाता है
इसलिए कुत्ते भौंक रहे थे

जो रगतू
कल राशन लूटने में शरीक था
उनके पास उसके नाम का वारण्ट
उसके परिवार ने रात भरपेट खाया है
भूख-भर अन्न के नशे में
अपने देश का एक मामूली घर भी
आरामगाह बना हुआ है
(वैसे उसे घर कहना भी
खामोखा जिन्हें घर कहते हैं
उनकी बढ़िया छतों पर घास उगा देना है)

करीब-करीब अपनी इच्छाओं की मुट्ठी खोलकर
इस समय तक वे सोये हुए हैं

अपनी लात में ताकत पैदा करके
उन्होंने उसे बूट से उठाया
और तुरन्त उसके हाथ बाँध दिये
(वे हाथ जो बड़ी-बड़ी इमारतों पर

पत्थर की तरह चिपके हुए हैं)
फिर बोरा भरे हुए अनाज के साथ
उसे शहर ले गये
जहाँ आदमी के लिए
जेल और पोस्टमार्टम की पूरी व्यवस्था है

पुलिसथाना पर आदमियों की भीड़ थी
इसलिए रंगनू की नंगी औरत
बाहर नहीं आ सकी
लेकिन भीतर
बच्चे उसके शरीर से पहनावे की तरह चिपके हुए थे

यह सुबह थी
गाड़ी के इंजन पर थरथराती हुई
अँधेरे के भीतर दुबके हुए अँधेरे में
बीवी-बच्चों के लिए लड़ता हुआ रंगनू
पहली बार गाड़ी पर 'फ्री' चढ़ रहा था

यह एक ऐसा वक्त था
जब वनस्पति
केवल घी के डिब्बे का मतलब था
और यहाँ भी कोई शब्द अपनी जगह में नहीं था

शब्द जो कि दाल और भात हैं
शब्द जो कि रोटी और साग हैं
नहीं-नहीं, शब्द इतनी बड़ी चीज नहीं हैं
शब्द केवल रोटी पर रखे हुए नमक के कण हैं
शब्द जो लार बनाते हैं
इस वक्त कहाँ से लाये जायें ऐसे शब्द
जो हलफनामा बन सकें
जो तरफदारी कर सकें

पुलिस की गाड़ी में उसकी शब्दहीन आत्मा
एक नंगे पेड़ की तरह है

जिस पर थाने पहुँचने से पहले
कई हजार घमौरियाँ फूट पड़ेंगी
कई हजार घमौरियों में बन्द भाषा
निशान की तरह बाहर उभर आयेंगे
भाषा अचानक सारे शरीर में फल पड़ेगी
और कई हजार जीभों से बोलता हुआ
वह बरी हो जायेगा

अपनी जड़ों के सहारे
अपनी मिट्टी में उतरा हुआ रँगतू
न पेड़ है। न पत्ता है। न हवा है
अँधेरे के भीतर दुबका हुआ अँधेरे का कीड़ा भी नहीं
शब्द भी नहीं
रँगतू एक अकेले आदमी का दर्द है
और अकेला आदमी अपराधी होता है
सवालों के जत्थों से भरा हुआ अकेला आदमी
एक दुर्घटना होता है

थाने पहुँचते ही
गाड़ी से उतरते हुए रँगतू ने
थोड़ी देर के लिए खुद को बड़ा आदमी महसूस किया
ड्राइवर ने गाड़ी का डाला खोला
और वह सिपाहियों की ही तरह कूदता हुआ
जमीन पर खड़ा हो गया

तभी एक सिपाही को (जो रास्ते-भर बीड़ी पीता रहा)
घर से आया हुआ तार दिया गया
तार पर उसकी माँ बीमार थी
लेकिन उसे शाम तक छुट्टी नहीं मिली

पक्का, 'जेल आडर' बनवाने तक
वह रँगतू को, रस्सा पकड़े हुए
एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाता रहा
तीन गिलास चाय

और बचन पंते की बेटी के घर पहुँचने के बाद
जिस समय झण्डा उतरने का मंजर बन रहा था
उस समय रेणु को बच्चन, कोठरी और मच्छर मिल रहा था
(लेकिन सिपाही की माँ
घर में बुझे हुए तार पर छटपटा रही थी)

जब तीसरे दिन छुट्टी पर
वह अपने गाँव पहुँचा तो उसकी माँ
मृत्यु की मोड़ पर
अभी झड़ पड़ने वाली
पानी की बूँद की तरह इन्तजार कर रही थी

वह भागा-भागा जिला अस्पताल गया
एम्बुलेंस माँगी
भाँग के पौधों के बीच जो खराब पड़ी थी
धतूरा जिसके इंजन से बड़ा हो गया था

कई पुरानी लाशों को लाँघते हुए
उसने चारों ओर अपना दिमाग दौड़ाया
और जब बड़ी मुश्किल से एक विचार
उसकी पकड़ में आया
तो वह लपककर पास ही थाने में गया

क्योंकि आजकल केवल आदमी होना
न्यायसंगत नहीं है
इसलिए उसने बताया कि मैं भी पुलिस विभाग का
आदमी हूँ
माँ को अस्पताल लाने के लिए
थोड़ा पुलिसगाड़ी दे दीजिए

उन्होंने कहा
पुलिस की गाड़ी अपराधियों को पकड़ने के लिए है
घर पर मरो या अस्पताल में मरो
सड़क पर मरो या श्मशानघाट पर पहुँचकर मरो

मरना कहीं भी अपराध नहीं है
और फिर तुम्हारी माँ का
हमारे पास कोई वारन्ट नहीं जो हम गाडी भेज दें
आखिर मरने वाले को कौन पकड सकता है
अक्सर हमारे पकडे हुए भी मर जाते हैं

जब शाम को एक दवा की शीशी और कुछ गोलियाँ लेकर
वह घर आया
तो उसने अपनी माँ को मरा हुआ पाया
ससार से यह फरारी किस अपराध से बचाती है ?

अभावो की इस आजाद कहानी मे
क्या इसी तरह होती है मुक्ति ?

आखिर बढ़ाई हुई छुट्टियो मे
जब उसने अपनी माँ को स्वर्ग पहुँचा दिया
तब वह फिर थाना बिजनौर मे लौट आया

वह विरक्त होना चाहता था
लेकिन अपना भविष्य उसे
भीतर ही-भीतर ठग रहा था
कर्मकाण्ड की सारी कमजोरी को ढकता हुआ
उसका उस्तरा फिरा सिर
किसी फिल्मी गुण्डे का सिर लग रहा था

फिल्म वालो को जब गुण्डे और हत्यारे
दिखाने होते हैं
तो वे अभिनेता पर आम आदमी का मेकप कर देते हैं
बात दूसरी ओर चली जायेगी
क्योकि इस बात को कान और जुबान की तलाश है
इसलिए मैं आपको
फिर से थाना बिजनौर ले चलता हूँ
जहाँ अपना घुटा हुआ सिर लेकर
वह सिपाही इस समय सन्तरी-ड्यूटी पर है

उसकी छाती पर गोलियों का पट्टा है
उसके हाथ में एक बन्दूक है
उसे नहीं मालूम वह किसकी रक्षा कर रहा है
(मेरी समझ में वह केवल टहल रहा है)
क्या वह सरकार की अपराध से रक्षा कर रहा है ?
क्या वह इस देश को बिगड़ने से बचा रहा है ?
भीतर एक कमरे में
अपने गन्दे लेकिन वरिष्ठ दाँतों को लेकर
दीवान बैठा है
रोजनामचे पर हाथ रखे हुए
जैसे वह शहर की पीठ हो

एक मार खाया हुआ आदमी घिघियाता है
मेरा बटुआ छिन गया
उसमें मेरी लड़की का फोटो भी था
वे उससे बलात्कार करेंगे
वे उसे मार डालेंगे
देखिए, मुझे कितनी चोटें आयी हैं
मेरा दर्द—दर्ज करो
इस मटीले कागज पर मेरा दर्द—दर्ज करो
अपने होंठों पर मुर्दा दिल को जिन्दा करते हुए
दीवान कहता है
किस कलम से करूँ ?
चाँदी की कलम से करूँ ? सोने की कलम से करूँ
कि लकड़ी की कलम से करूँ ?

मार खाया हुआ आदमी रिरियाता है
कि कानून की कलम से करो

कानून की कलम लकड़ी की होती है
दीवान कहता है—कल आना
मगर अपना गवाह भी साथ लाना
और किसी डाक्टर से यह भी लिखवा लाना
कि तुमने मार खायी ही-खायी है···

बाहर सन्तरी-ड्यूटी पर खड़ा बलदेव खटिक
जिसका सिर मुँडा हुआ है
जिसकी माँ बिना दवाई के मर गयी थी
सब सुन रहा है
(थाने की बड़ी घड़ी सुधार कर
घड़ीसाज़ फाटक से बाहर आ रहा है)

अचानक सामने खड़े नीम के पेड़ पर
उतरते शाम के कौवों से बलदेव खटिक कहता है
— ध्यम'
मगर वे नहीं रुकते
वह धड़ाधड़ फायर करता है
बन्दूक के बट को थाने की दीवार से मारकर
तोड़ देता है
और सीढ़ियाँ उतरकर
सड़क पर मरे हुए कौवों को लाँघकर
फरार हो जाता है

(थाने की बगल में उस समय सिनेमाघर के भीतर पर्दे पर एक
ऐक्टर प्यार कर रहा था)

अब तक वह सन्तरी था
अब वह बलदेव खटिक है
'माँ की चूत इस नौकरी की' कहकर वह
माँ, माँ, माँ चिल्लाता हुआ
सीधा हमारे गाँव में घुस आया

उसके सिर पर टोपी नहीं है
कमीज हाफपैंट से बाहर आ गयी है
वह हरेक औरत से पूछता है तुमको क्या बीमारी है?
अस्पताल तक पैदल चलो। गाड़ी खराब है

बच्चों से कहता है लाओ मेरी लकड़ी का कलम

किसी की बीमारी पूछे बगैर
किसी के पास एक क्षण रुके बगैर
किसी को कोई पैगाम दिये बगैर
वह दौड़ता हुआ आया
और रंगू की झोंपड़ी में
बेहोश होकर गिर पड़ा
(झोंपड़ी का दरवाजा खुला हुआ था
रंगू डाकाजनी के मामले में जेल भेजा गया था
और उसकी औरत भी बच्चों समेत
वहां नहीं थी
मगर किसी ने भी उन्हें वहां आते नहीं देखा था
भीतर से नींद में मुंह छुपाये हुए
एक कुत्ता निकला और अगली गली में मुड़ गया)

सुबह होने वाली है
लेकिन रात अब भी मौजूद है
रात उस वक्त भी मौजूद रहेगी
जब लोग दोपहर को उतरते हुए देख रहे होंगे

हर घर को अपने दर्द में लपेटती
दरवाजों की सन्धों को चौड़ा और चौड़ा करती हुई
रात ब्यानेवाली है
चिड़ियों और कौवों और कुत्तों के सामूहिक शोर में
पत्तियाँ थरथराने वाली हैं…

तभी हमारे गाँव के आकाश में
अचानक लोगों ने एक दरार देखी
सड़क में रोशनी फैलती हुई
फिर वह पुलिस की गाड़ी थी

राख की तरह झरती सुबह में
चमकती हुई कुत्तों की भौंक के बीच
बीड़ी पीते हुए वे उतरे
सम्बन्धों की वीरानगी में

उनके साधारण चेहरा पर
घरेलू थपेडो की गहरी शिनाख्त है
टट्टी फिरते हुए बच्चे है। फोडे है
चूल्हे पर चढा हुआ खदबदाता पानी है
भात के भपारे हैं

वे उतरे और रँगतू की झोपडी से
उस पागल सिपाही को बाँधकर ले गये
पहले उन्होंने उसके सरकारी कपडे उतारे
क्योकि सरकार पागल नही होती
सरकार अपराधी नही होती

यह अलग बात है कि हथकडी और सजा
इन दोना मे से
आम आदमी के लिए सरकार क्या होती है ?

उन्होने भी उसे हथकडी पहना दी
और आम आदमी मे तब्दील कर दिया

वह अपने ही गाल पर चाँटे मार रहा है
उसके पास न कोई सहमति है और न कोई इन्कार
धरती को पीटते हुए
वह अपने ही पैर तोड रहा है

फिर भी उसके पागल सिर पर
बाल
आधा इच बडे हो गये है
उसके लम्बे नाखून ससार की धूल से
गन्दे हो रहे हैं
उसके हाथा म अब भी एक आदमी की ताकत
मौजूद है
लेकिन उसे अपने दुश्मन की सही पहचान नही है
और उसने गोलिया सही जगह नही दागी हैं

अब वह एक कोठरी में बन्द है
और उससे बयालीस नम्बर कुछ दूर
बाहर एक सन्तरी है
एक कन्धे से दूसरे तक टहलता हुआ
कद में ज्यादा जिसके बूट में चमक है
अपनी मुस्तैदी में
जिसका मजबूत शरीर
अनुशासन की रक्षा है

उसकी छाती पर भी
गोलियों का एक पट्टा है
सिर पर टोपी है और हाथ में बन्दूक है
मगर वह पहले वाले सिपाही से कहाँ पर अलग है ?

वह भी अपने देश को
न कहीं पर जाता है
न कहीं पर सोता है
उससे कहा गया है कि हुक्म पर काम करो
विश्वास केवल दीवान का करो—दरोगा का करो
(उसका निजी कोई विश्वास नहीं)
अब देखना यह है कि
ये कब पागल होता है ।
एक अच्छा खासा
काम करता हुआ आदमी
पागल हो जाये
१९७४ की राजनीति में
इसके लिए कोई शब्द नहीं
मैं आपको यकीन दिलाता हूँ
[illegible]
कोई पागल नहीं था

आप लोग अपनी परवाह करें
अपने बच्चों की जाँच करवायें
यह केवल अफवाह नहीं

(बल्कि जिन्दा होने की नयी शर्त है)
कि देश में कुछ लोग
पेट से ही पागल होकर आ रहे हैं

लेकिन ये जब फायर करेंगे
तो यह तय है कि
इस बार कौवे नहीं मरेंगे

